PREFACE.

The following lectures were written for delivery at a small Summer School of Theology held in Benares

Expressions of appreciation accorded by the hearers, encourages the writer to hope that their publication may prove of some service to a wider audience Possibly his brother evangelists and preachers may find them of some use, and the presentation of Christian and Hindu teachings side by side on some of the fundamental doctrines of religion may be profitable to some who are not Christians but who have an open mind

The writer is deeply conscious of the inadequacy of the treatment of the great subjects which are dealt with Such inadequacy may be, to some extent extenuated on the ground that the lecturer was limited as to time, but his shortcomings must also bear their share of the blame

Two subjects of vast moment are not included in the course, viz, The Atonement and The Incarnation The former is so distinctly Christian that it seemed hardly to come within the scope of the lectures, the Incarnation is such a large subject (covering as it does not only the "Awatars" but the whole pantheistic trend of Hindu thought) that it demands a separate treatise

The little book is sent forth in the hope that it may find a corner in the very limited Hindi literature on the subject

BENARES
October the 9th 1905

EDWIN GREAVES

सूचीपत्र ।

१. ईश्वर ।

२. मनुष्य ।

३. विश्व।

४. पाप।

५. मुक्ति।

हिन्दू मत और मसीही मत।

१ ईश्वर।

भूमिका।

इन व्याख्याओं में हमारा विशेष अभिप्राय यह है कि हम हिन्दू मत और मसीही मत के मुख्य सिद्धान्तों पर सोच विचार करके निर्णय करें कि वे कहां लों समान हैं और कहां लों उन में भिन्नता पाई जाती है।

यह नहीं समझना चाहिये कि मसीही और हिन्दू मत हर एक बात में विरोधी हैं और कभी यह नहीं समझना चाहिये कि हिन्दू और मसीही आपस में शत्रु हैं। मेरा आसरा है कि यह बात प्रगट होगी कि दोनों मतों की मनसा और अभिप्राय एक है और दोनों में कई एक सिद्धान्त हैं जो कुछ समान हैं तौभी बहुत सी बातें हैं जिन में विरुद्धता और भिन्नता पाई जाती है। हर एक प्रकार से हमारे लिये यह लाभदायक बात होगी कि हम किसी प्रकार की समानता पाके आनन्दित होवें और भिन्नता देखके निरूपण करें कि कौन २ सिद्धान्त यथार्थ और उत्तम और स्वीकार करने के योग्य हैं।

कभी न भूलना चाहिये कि मसीहियों के लिये यह बात काफ़ी नहीं है कि वे इस बात को स्थापित करें कि अमुक २ सिद्धान्त बैबल में हैं क्योंकि हिन्दू नहं मानते हैं कि बैबल प्रामाणिक और ईश्वरीय पुस्तक है

जैसे कि हम नहीं मानते कि वेद और उपनिषद और पुराण ईश्वरीय हैं। कदाचित कोई यह कहे कि उचित यह है कि हम इस बात को स्थापित कर देवें कि बैबल ईश्वरीय और प्रामाणिक है और इस कारण उस के सब सिद्धान्त अवश्य ग्रहण करना चाहिये। यह बात यथार्थ है पर यह पूछना आता है कि हम किस प्रकार से इस को निश्चय करा दें। मेरी समझ में एक रीति यह है कि हम दिखलावें कि बैबल में मुख्य सिद्धान्त ऐसे हैं कि वे आप से आप उत्तम और संयुक्त और मनुष्यों के स्वीकार करने के योग्य दिखलाई देते हैं यहां लों कि यदि कोई मनुष्य पक्षपात को छोड़के और सीधे और सरल और नम्र मन से सोच बिचार करे और दीनहीन होके परमेश्वर से सहायता मांगे तो वह निश्चय कर सके कि यह सिद्धान्त सच और यथार्थ है। इस के उपरान्त जब उस को प्रतीति हुई कि ये मुख्य बातें वास्तव में सच्ची और उत्तम और श्रेष्ठ हैं तब वह मानने को तैयार होगा कि जिस पुस्तक में ऐसे सिद्धान्त प्रगट किये गये हैं अवश्य ईश्वरीय है और वह मनुष्य बैबल की और और बातों को स्वीकार करने को प्रस्तुत होगा।

मैं समझता हूं कि बैबल में बहुत सी बातें हैं जो हमारी समझ से बाहर हैं पर ऐसी नहीं जो समझ के विरुद्ध हैं।

ईश्वर।

इस पहिले व्याख्या में इस बात का निरूपण करना चाहिये कि हिन्दू मत और मसीही मत में ईश्वर के बारे में क्या क्या सिद्धान्त हैं।

हिन्दू मत ।

एक कठिन बात यह है कि हिन्दू मत में ईश्वर के विषय में कोई स्थित विशेष सिद्धान्त नहीं है। वेदों और उपनिषदों और छः दर्शनों और पुराणों और दूसरे दूसरे शास्त्रों में नाना प्रकार के सिद्धान्त हैं और इन सिद्धान्तों में बहुत और बड़े बड़े भेद हैं ।

पुराण ।

पुराणों में बहुत से देवताओं और देवियों की चर्चा है और वे बहुधा ईश्वरों के समान बतलाये जाते हैं। प्रायः करके ब्रह्मा विष्णु और महेश मुख्य गिने जाते हैं पर और बहुत से हैं जैसे गणेश इन्द्र लक्ष्मी भवानी इत्यादि और इन को छोड़के विष्णु के अवतार हैं विशेष करके राम और कृष्ण जो मानो अलग २ ईश्वर गिने जाते हैं। चन्द भक्त विष्णु को और चन्द शिव को मुख्य और श्रेष्ठ मानते हैं। अधिक लोग कभी एक देवता कभी दूसरों की पूजा किया करते हैं वे मानो सभों की शरण लेते हैं।

तोभी मैं समझता हूं कि पुस्तकों में और लोगों के कहने और समझ में कहीं न कहीं और कभी न कभी यह अनुमान या बिचार कुछ न कुछ होता है कि नाम तो बहुत हैं पर अवश्य एक ही ईश्वर होगा पर अपने अनेक गुणों के कारण वह नाना प्रकार के नाम और रूप धारण करके अपने तईं प्रगट करता है। पर मेरी समझ में यह उन लोगों का कभी का कहना ही है पर वे नित

ऐसा नहीं कहते हैं और बहुत ही कम ऐसा सोच विचार करते हैं । वे बहुतों की पूजा करते हैं इस कारण कि वे उन बहुतों को भिन्न २ ईश्वर मानते हैं और उन के ध्यान में यह सिद्धान्त ठीक नहीं बैठता है कि सचमुच एक ही ईश्वर है ।

हिन्दू मत की तीन प्रकार की शिक्षा ।

इस में कुछ संदेह नहीं कि जो वर्णन अब किया गया है अधिक हिन्दुओं का साधारण मत है पर इस को छोड़के और २ मत हैं । यदि कोई कहे कि विशेष करके हिन्दू मत का ठीक २ सिद्धान्त क्या है ईश्वर के विषय में इस का उत्तर देना न केवल कठिन बरन अन्होना है । इस के तीन उत्तर दिये जाते हैं और वे सब कुछ न कुछ ठीक गिने जाते हैं अर्थात् चन्द हिन्दू एक स्वीकार करेंगे चन्द एक परन्तु बहुत ऐसे हैं जो कभी एक को मानते हैं और कभी एक । इस से बढ़के यह भी कहा जा सकता है कि कई एक ऐसे मिलेंगे जो यह कहेंगे कि तीनों तो साधारण रीति से सच हैं तौभी एक और बात है जो वास्तव में यथार्थ है और वह तीनों से भिन्न है ।

संक्षेप में हम इन तीन बातों का वर्णन इस रीति से लिख सकते हैं ।

१. ईश्वर बहुत हैं ।

२. ईश्वर एक है पर कभी एक प्रकार से कभी दूसरे प्रकार से प्रगट होता है । कभी एक नाम से कभी दूसरे नाम से जाना जाता है ।

३. ईश्वर सब कुछ है। वह यहां लों व्याप्त है कि संसार और जो कुछ उस में है सब वस्तुएं सब पशु सब मनुष्य सब देवता उस से भिन्न नहीं वरन उसी के मानो अंश हैं।

एक २ बात के बारे में कुछ वर्णन करना चाहिये।

ईश्वर बहुत हैं।

१. लोग जो कहें सो कहें पर इस में कुछ सन्देह नहीं कि अधिक हिन्दू जो बहुत लिखे पढ़े नहीं हैं और बहुत भी जो कुछ लिखे पढ़े हैं यह समझते हैं कि अलग २ देवता और देवियां जिन के नाम वे लेते हैं और जिन की पूजा वे करते हैं अलग अलग ईश्वर हैं। कदाचित वे कहने में कुछ मान लेंगे कि इन को छोड एक परब्रह्म परमेश्वर है जिस से वे सब उत्पन्न हुए हैं तौभी वह उन के लिये केवल नाममात्र है वे मान लेते हैं कि उस से हमारा कुछ संबंध नहीं है वह हमारी न सुनता है न हमारे लिये कुछ चिन्ता करता है या कुछ करता है हमारे लिये जो कुछ होवे सो देवताओं की सहायता से बन पड़ेगा।

चन्द लोग किसी को अपना इष्टदेवता ठहराके बहुधा या नित उसी की पूजा करते हैं चाहे और देवता हों या न हों यह हमारा ईश्वर है मैं उसी का शरणागत हूं। पर अधिक करके चाहे वे कोई इष्टदेवता मानें या न मानें तौभी वे औरों की पूजा भी करते हैं और वे इस कारण उन को भी मानते हैं कि उन की समझ में सब देवता

कुछ प्रबल हैं। कभी लोगों का यह ख़ियाल है कि किसी समय या किसी स्थान में एक प्रबल है दूसरे समय और दूसरे स्थान में दूसरा।

कुछ आवश्यकता नहीं है कि हम देवताओं के नामों और गुणों का वर्णन करें वे अगणित हैं। बात तो यह है कि लोग इन बहुतों को ईश्वर करके मानते हैं और उन को छोड़के किसी एक परब्रह्म परमेश्वर को नहीं मामते हैं न उस की आराधना करते हैं।

ईश्वर एक है पर उस के रूप बहुत हैं।

२. चन्द लोग बतलाते हैं कि नाम तो बहुत हैं सही पर चाहे हम महादेव कहें चाहे राम चाहे कृष्ण चाहे गणेश तौभी वे सब के सब एक ही हैं। कभी हिन्दू लोग ऐसा कहा करते हैं पर यह केवल कहने की बात है मन ही मन में वे इन को अलग २ मानते हैं। न केवल इन देवताओं के नामों में भेद है पर चरित्रों और गुणों में भी।

ईश्वर सब कुछ है।

३. और २ हिन्दू लोग यह कहते हैं कि यह सब एक ही नहीं हैं तौभी सब में एक ही ईश्वर व्याप्त है ईश्वर यहां लों महान और सर्वगुणी है कि एक देवता या अवतार के द्वारा उस के सब गुण प्रगट नहीं हो सकते हैं नाना प्रकार के देवताओं के द्वारा ईश्वर के नाना प्रकार के बल और प्रताप और गुण और शक्तियां दिखलाई देती हैं और वे मानो सब के सब मिलके

ईश्वर का स्वरूप हैं। इस शिक्षा के अनुसार ये सब देवता ईश्वर के अंश हैं और अलग २ अंशों में ईश्वर के अलग २ गुण पाये जाते हैं। जैसे कि रामायण में दशरथ के पुत्रों के बारे में लिखा हुआ है। बात तो सच है कि कभी लोग बतलाते हैं कि अमुक में ईश्वर पूर्ण रीति से प्रगट हुआ है जैसे कि रामभगत प्रायः यह कहा करते हैं कि राम अवतार में ईश्वर की संपूर्णता उपस्थित थी पर फिर यह कहना पड़ता है कि वे कहते हैं पर मानते नहीं नहीं तो वे क्यों सीता की और लछमण की पूजा करते हैं और अधिक करके वे औरों के नाम भी लेते हैं और उन की पूजा करते हैं।

वेदान्त मत के विषय में।

वेदान्तियों की शिक्षा इन तीनों से भिन्न है। वे ठीक २ यह नहीं बतलाते हैं कि ईश्वर एक है पर यह कि ईश्वर है और ईश्वर को छोड़के हम और किसी वस्तु के बारे में ठीक नहीं कह सकते हैं कि वह है। उन की शिक्षा के अनुसार ईश्वर अद्वैत है जिस का यह अर्थ नहीं है कि ईश्वर को छोड और कोई ईश्वर नहीं है पर यह कि ईश्वर को छोड़ और कुछ तो है ही नहीं। जो कुछ है सो ईश्वर है और जो कुछ ईश्वर नहीं सो है ही नहीं। संसार और स्वर्ग और नरक आकाश और पृथिवी और देवता और मनुष्य और पशु ये भी सब के सब सचमुच हैं ही नहीं। वह भी जो प्रायः ईश्वर कहलाया जाता है सो भी सचमुच नहीं है क्योंकि वह

सगुण है वास्तव में केवल एक ब्रह्म है जो निर्गुण है। वेदान्ती मानते हैं कि ब्रह्म एक आरोपित या झूठ रीति से माया से संयुक्त होके ईश्वर दिखलाई देता है और इस के अनन्तर संसार और मनुष्य इत्यादि दिखलाई देते हैं पर ईश्वर का और देवताओं और मनुष्यों और संसार का होना केवल स्वप्नवत हैं। वास्तव में वे न हुए न हैं न होंगे हम केवल भूलके समझते हैं कि वे हैं वे सचमुच नहीं हैं। और समझ लीजिये कि यह मान लेना कि वे नहीं हैं और केवल ब्रह्म ही है यही तो मुक्ति है। या वे इस प्रकार से भी बतलाते हैं कि माया या अविद्या के बल से ये सब पदार्थ एक प्रकार की सत्ता या होना रखते हैं पर वह सत्ता केवल व्यवहारिक है जो सचमुच सत्ता नहीं है पर एक झूठ या स्वप्नवत दर्शन है जो अज्ञान से उत्पन्न हुआ है।

जब हम ज्ञानी हुए तो हम नहीं कहेंगे कि ब्रह्म है (यह समझते हुए कि ब्रह्म हम से भिन्न है) पर यह कहेंगे कि मैं ब्रह्म हूं अर्थात् जहां तक मैं कुछ हूं मैं ब्रह्म हूं और जहां तक मैं ब्रह्म नहीं हूं मैं तो कुछ नहीं हूं।

ऐसी शिक्षा के अनुसार यह ब्रह्म क्या है। यदि सचमुच निर्गुण है तो उस के विषय में हम क्या कह सकते हम क्या सोच सकते हैं। यह ब्रह्म नाममात्र है। जो निर्गुण है हम उस को क्या समझें क्या हम उस पर भरोसा रखें हम उस से कुछ मांगें। हम पापियों के लिये ऐसा ब्रह्म नहीं चाहिये पर कोई ईश्वर चाहिये जो हमारी सुने और हम पर दया करे और हमारी सहायता करे।

हम मान लेते हैं कि वेदान्तमत बहुत सी बुरी बातों

से बच गया है जो पुराणों में पाई जाती हैं पर उस में एक सच्चे परमेश्वर का वर्णन नहीं है जिस को हम ढूंढ़ते हैं।

शंकराचार्य्य और रामानुज।

पर सब वेदान्ती यह मत जैसे कि ऊपर लिखा गया है नहीं मानते हैं। इस मत का विशेष कर्त्ता या टीका-कर्त्ता शंकराचार्य्य है जिस ने वेदान्त सूत्र की टीका लिखी पर उस वेदान्त सूत्र का एक और प्रसिद्ध टीका-कार है अर्थात रामानुज जिस ने अपने श्री भाष्य में वेदान्त सूत्र का दूसरा वर्णन किया है उस की शिक्षा है कि वह जो सगुण ईश्वर है वही ब्रह्म है और मनुष्य एक प्रकार से ईश्वर से भिन्न है और सदा भिन्न रहेंगे ईश्वर में लौलीन नहीं होवेंगे। शंकराचार्य्य की शिक्षा की अपेक्षा रामानुज की शिक्षा नाना प्रकार से अच्छी है पर मालूम होता है कि रामानुज और उस के अनुकारी निर्गुण ब्रह्म के जाल से बचके देवताओं के फन्दे में बझ गये हैं और वे नाना प्रकार की बातें मानते हैं जो मानने के योग्य नहीं हैं।

मसीही मत। ईश्वर एक है।

अब देखना चाहिये कि मसीही शिक्षा में ईश्वर के बारे में क्या कहा जाता है। ईश्वर एक है। देवताओं और देवियों की कुछ चर्चा नहीं जिन की पूजा करने से किसी प्रकार का लाभ हो सकता है। प्रवक्ता लोग नित्य

यह कहा करते हैं कि जो कोई एक सच्चे ईश्वर का नाम छोड़के और किसी का नाम लेता है या और किसी की पूजा करता है वह ईश्वर की निन्दा करता है।

यह बात तो मानी जाती है कि ईश्वर को छोडके और २ व्यक्तियां हैं जो कुछ महान और बलवन्त हैं पर वे सदा से नहीं हैं और वे सब ईश्वर के अधीन हैं और सर्वथा पूजा करने के योग्य नहीं हैं और यह भी लिखा है कि एक दुष्टात्मा शैतान है और उस के बहुत से अनुकारी आत्मा हैं जो ईश्वर के विरुद्ध हैं पर यह भी लिखा है कि वे भी ईश्वर के बश में हैं और ईश्वर के बिश्वासियों को नष्ट नहीं कर सकते हैं। मसीहियों को चाहिये कि वे शैतान और उस के दूतों से न डरें न किसी प्रकार से उन की पूजा करे या उन को मनावें। स्वर्गीय दूत और शैतान और शैतानी दूत हिन्दुओं के देवता देवियों और राक्षसों से सर्वथा भिन्न हैं।

बात सच है कि ईश्वर के अनेक नाम हैं पर नामी एक है। केवल इस कारण उस के नाम बहुत हैं कि ईश्वर में सब अच्छे गुण और शक्तियां पाई जाती हैं और उस के अनेक नामों के द्वारा उस के अनेक गुणों का प्रकाश होता है। व्यवस्था में और गीतों में और प्रवक्ताओं की पुस्तकों में मुख्य शिक्षा यही है कि ईश्वर हमारा ईश्वर एकही ईश्वर है।

और जैसे कि पुराने नियम में वैसेही नये नियम में भी नित यही शिक्षा है कि ईश्वर एकही है।

यहां ईश्वर के बारे में तीन बातें कहनी चाहिये।

ईश्वर कौन है और कैसा है।

१. ईश्वर स्वयम उत्तम से उत्तम और श्रेष्ठ है। वह न केवल सर्वशक्तिमान है बरन हर प्रकार से अच्छा है। जो कुछ वह सोचे या इच्छा करे या कहे या करे सो अच्छा और यथार्थ है। यह नहीं समझना चाहिये कि जो कुछ वह करता है सो इस कारण से अच्छा है कि ईश्वर ने किया है पर यह समझना चाहिये कि ईश्वर ने इस कारण से किया कि वह अच्छा और यथार्थ है अर्थात ईश्वर न केवल अधिकारी है पर उस में सब अच्छे गुणों का संग्रह है। उस का स्वभाव हर प्रकार से यथार्थ है और इस कारण स्वाभाविक रीति से सब कुछ अपने स्वभाव के अनुसार करते हुए वह सब कुछ अच्छा करता है।

ईश्वर पावन और पवित्र है वह न पाप करता न कराता है वह न्यायी है तौभी प्रेमी होके दयावन्त और कृपालु है। वह सच्चा है और उस में विकार नहीं है। आरम्भ से लेके अन्त लों वह बदलता नहीं। निःसन्देह देश २ और समय २ लोगों के खियाल ईश्वर के बारे में बदलते रहते हैं पर ईश्वर एकसा रहता है। समय २ के लोगों की समझ के अनुसार ईश्वर ने अपने तईं प्रकाशित कर दिया है जिस का अर्थ यह नहीं है कि ईश्वर कभी अपने तईं एक रंग और ढंग का बतलाता और कभी दूसरे का पर यह कि मनुष्यों की समझ के बढ़ जाने के प्रमाण के अनुसार ईश्वर अपने विषय में और गंभीर बातें प्रकाश कर देता है। ईश्वर ने पूर्वकाल

में समय २ और नाना प्रकार से (या भाग २ से और रीति २ से) भविष्यद्वक्ताओं के द्वारा पितरों से बात कर इन पिछले दिनों में हमों से पुत्र के द्वारा बातें किईं । इब्रियों १ : १, २ ।

ईश्वर विश्व से क्या सम्बन्ध रखता है ।

२. ईश्वर सृष्टिकर्त्ता है । संसार और जो कुछ उस में है ईश्वर का बनाया हुआ है संसार आप से आप नहीं बना और न आप से आप चलता है पर उस के बश में रहके उस के उपाय के अनुसार । और जब ईश्वर की आज्ञा हो तब संसार लोप हो जायगा ।

ईश्वर मनुष्य से क्या सम्बन्ध रखता है ।

३. मनुष्य एक सनातन जीव नहीं है पर ईश्वर ने उस को उत्पन्न किया है । मनुष्य तो एक प्रकार से पशु है पर उस में ऐसे आत्मिक गुण भी हैं कि यह कहा जा सकता है कि ईश्वर ने उस को अपने स्वरूप में बनाया ।

ईश्वर का त्रैएकत्व ।

ईश्वर एक है तौभी पिता पुत्र और पवित्रात्मा की चर्चा है । और कभी २ मसीही लोग असावधान होके ऐसी २ बाते कहा करते और ऐसी २ शिक्षा भी देते हैं कि मानो तीन ईश्वर हैं । ईश्वर के त्रैएकत्व के बारे में बहुत सावधानी से कहना चाहिये । ईश्वर एक है तीन नहीं तौभी ईश्वर की एकता ऐसी नहीं कि उस

के विषय में पिता पुत्र और पवित्रात्मा कहना उचित नहीं है तौभी पिता पुत्र और पवित्रात्मा का वर्णन इस रीति से नहीं करना चाहिये कि ईश्वर की एकता में कोई विशेष भिन्नता उत्पन्न होवे।

हम मान लेते हैं कि ईश्वर के त्रैएकत्व का पूरा वर्णन किसी से नहीं किया जा सकता है और कारण इस का तो यह है कि यह बात पूर्णता से किसी की समझ में नहीं आ सकती है पर समझ लीजिये कि ऐसा मान लेने का तात्पर्य्य यह नहीं है कि पिता पुत्र और पवित्रात्मा मानो एक मन्त्र है जिस का हमारे लिये कोई अर्थ नहीं है यह हमारे लिये वचनमात्र नहीं है पर अर्थ से भरपूर है तौभी यह बात सच है और आश्चर्य्य की बात नहीं है कि ईश्वर का विशेष तत्व ऐसा है कि उस में की बहुत सी गहिरी २ बातें हैं जो हमारी समझ से बाहर हैं। ईश्वर के बारे में और पिता पुत्र और पवित्रात्मा के बारे में हम बहुत कुछ समझ सकते हैं पर बहुत कुछ भी है जो हम नहीं समझ सकते हैं।

यह कहना उचित नहीं है कि पिता पुत्र और पवित्रात्मा केवल तीन नाम हैं। न तो यह कहना ठीक है कि ये ईश्वर के तीन गुणों के नाम हैं। न तो यह वर्णन यथार्थ है कि यीशु के इस संसार में आने से पहिले ईश्वर को पिता समझना चाहिये तब यीशु के अवतार लेने पर पुत्र कहना चाहिये और उस के स्वर्ग पर चढ़ने के अनन्तर ईश्वर को पवित्रात्मा कहना चाहिये। तीनों के तीनों थे और हैं और रहेंगे। पिता तो पुत्र

नहीं है और पविचात्मा नहीं है और पुत्र पिता नहीं है न पविचात्मा। यीशु संसार में रहते हुए अपने पिता से प्रार्थना करता था और पविचात्मा के विषय में कहा कि मै उस को भेजूंगा वह मेरे विषय में साक्षी देगा इत्यादि। देखो योहन १६ : ७, ८, १३—१५।

कदाचित यह कहना ठीक नहीं है कि पिता पुत्र और पविचात्मा तीन व्यक्तियां हैं क्योंकि हमारे कहने और समझने के अनुसार व्यक्तियां भिन्न भिन्न रहती हैं चाहे वे आपस में समानता रखें तौभी वे एक नहीं हैं। पर ईश्वर एक है तौभी उस की एकता ऐसी नहीं कि उस में किसी न किसी प्रकार की भिन्नता नहीं है पर यह भिन्नता ऐसी है कि उस में मेल के विरुद्ध और एकही तत्व के विरुद्ध कोई बात पाई नहीं जा सके। "मै और पिता एक हैं जिस ने मुझे देखा सो पिता को देखा है।"

वेदान्त में निर्गुण और सगुण ईश्वर के विषय में बहुत वादविवाद होता है। अधिक लोग बतलाते हैं कि निर्गुण जो है वही तो ब्रह्म है और वह सच्चिदानन्द भी कहलाता है पर यह नाम (सच्चिदानन्द) केवल वचन माच है क्योंकि चित नाम रखते हुए वह चैतन्यात्मा नहीं है और आनन्द नाम रखते हुए वह आनन्दित नहीं है रहा तो सत या सत्ता पर यह क्या है। केवल यह कहा जा सकता है कि वह है पर वह क्या है। यह नहीं पूछा जाय क्योंकि उत्तर नहीं दिया जा सकता है वह आप नहीं भावता है कि मैं क्या हूं। यह मत शंकराचार्य्य का मत है उस के अनुसार सगुण जो ईश्वर

कहलाता है सो केवल माया कल्पित है वह ब्रह्म नहीं है बरन वास्तव में तो है ही नहीं।

रामानुज बतलाता था कि यह ठीक नहीं है ब्रह्म और ईश्वर दोनों एकही हैं और ब्रह्म कभी उसी प्रकार से निर्गुण नहीं है जैसे कि शंकराचार्य्य और उस के अनुगामी बतलाते हैं वह केवल उन गुणों से परे है जो उस के योग्य नहीं हैं। वह नित गुणी तो है अर्थात उन सब गुणों को रखता है जो उस के तत्व के योग्य हैं। वह व्यक्ति है। वह ज्ञानी है। वह प्रेमी है। वह कर्त्ता है। वह अपने भक्तों से संबन्ध रखता है। वह आराधना करने के योग्य है। तौभी मैं समझता हूं कि रामानुज और उस के अनुगामी देवपूजा और मूर्त्तिपूजा में फंसके उचित रीति से ईश्वर का बर्णन नहीं कर सकते हैं जैसे कि बैबल में और विशेष करके यीशु मसीह के द्वारा बर्णन किया गया है।

पुराने नियम में अवतार के बारे में पूरी रीति से बयान नहीं किया गया है तौभी उचित रीति से ईश्वर के गुण दिखलाये गये हैं। वह सृष्टिकर्त्ता है और पालनहार है वह मनुष्यों का स्वामी और पिता है उन से वह संबन्ध रखता है और हर प्रकार से उन की भलाई न केवल चाहता है पर उन की भलाई के लिये सब कुछ करता है वह स्वयम पवित्र और पावन और न्यायी है तौभी दयालु और कृपालु है।

नये नियम में हम देखते हैं कि उचित समय पर ईश्वर ने अवतार लिया और जहां लों ईश्वर के गुण मनुष्यता के क्षेत्र में दिखलाये जा सकते हैं अपने तईं

दिखलाया है। यीशु तो ईश्वर की प्रतिमा है उस के द्वारा हम ईश्वर को जान सकते वरन मानो देख भी सकते हैं और समझ बूझके उस की आराधना कर सकते हैं। "फिलिप ने यीशु से कहा हे प्रभु पिता को हमें दिखाइये तो हमारे लिये यही बहुत है। यीशु ने उस से कहा हे फिलिप मैं इतने दिनों से तुम्हारे संग हूं और क्या तू ने मुझे नहीं जाना है जिस ने मुझे देखा है उस ने पिता को देखा है......क्या तू प्रतीति नहीं करता है कि मैं पिता में हूं और पिता मुझ में है।"

---

२. मनुष्य।

पहिली व्याख्या में ईश्वर के विषय में कुछ सोच बिचार हुआ है इस में मनुष्य के बारे में बिचार करना पड़ेगा।

मनुष्य क्या है।

मनुष्य क्या है। कहां से और किस प्रकार से उत्पन्न हुआ। उस के होने का परिणाम और परमार्थ क्या है।

न्याय और वैशेषिक दर्शनों में सिद्धान्त यह है कि आत्मा या जीव अगणित और अनादि और अनन्त हैं। जो अनादि है उस के सृजनहार की क्या चर्चा हो सकती है। इन दर्शनों के मत के अनुसार मनुष्य सदा से हैं और सदा लों रहेंगे (उन की दशा कैसी क्यों न होवे) वे अपने कर्म्मों के फल भोगते रहते हैं और अपने कर्म्मों के अधीन हैं ईश्वर के नहीं।

सांख्य दर्शन में भी मत कुछ न कुछ वैसाही है। मनुष्य अनादि हैं प्रकृति से मिलके वे शारीरिक मनुष्य बन जाते हैं और प्रकृति से छूट जाना यही मुक्ति है।

पातंजलि का योगदर्शन सांख्य मत से बहुत मिल जाता है। उस के मुख्य सिद्धान्त इस अभिप्राय के हैं कि मनुष्य किन २ रीतियों से मुक्ति पा सकते हैं। पर इन बातों का बर्णन यहां नहीं करना चाहिये।

हिन्दुओं का साधारण मत क्या है मनुष्य के विषय में। इस का बर्णन कुछ कठिन है क्योंकि लोगों के बीच नाना प्रकार के मत प्रचलित हैं चन्द लोग एक बात और चन्द कुछ दूसरी बात मानते हैं। अधिक लोग

कदाचित किसी एक विशेष मत समझ बूझके स्वीकार नहीं करते हैं वे कभी एक की ओर कभी किसी दूसरे की ओर झुक जाते हैं। उन का खियाल (जहां लों वे इस बात के बारे में कुछ खियाल करते) कुछ ऐसा है कि "हां हम तो हैं सही। पर कहां से हैं यह कौन जाने। परम्परा की लीक पर चलना चाहिये। जैसे कि हमारे बापदादे पूजापाठ करते हुए आये हैं वैसेही हमें करना चाहिये। आखिरकार अच्छा क्यों न होवे। पर, ठीक २ क्या होवेगा यह हम कैसे जानें।"

तौभी वेदान्तियों का मत सब लोगों के बीच कुछ न कुछ फैल रहा है और वे जो लिखे पढ़े नहीं हैं कुछ कहते और तनिक भी मान लेते हैं कि मनुष्य बार २ जन्म लेते और अपनी २ करणी के फल भोगते हैं। पर इस बात का बिचार वे नहीं करते कि मनुष्य कब से और कहां से हैं। और अन्त ही अन्त में उस की क्या दशा होगी।

वेदान्त मत।

वेदान्त मत का वर्णन किस प्रकार से किया जायगा। मनुष्य मानो एक स्वप्न है पर किस का स्वप्न। किसी का नहीं। ब्रह्म अविकार है उस का स्वप्न नहीं हो सकता है। तौभी उस को छोड़के और कौन है जो स्वप्न देख सकता है। मनुष्य माया या अविद्या का सन्तान है। मनुष्य भूल में फंसके समझते कि हम हैं पर वास्तव में वे हैं ही नहीं। जहां तक वे कुछ हैं वे ब्रह्म हैं (या ठीक २ "है" क्योंकि जहां केवल एक है वहां बहुवचन

क्यों काम में आवे ।) और जहां तक वे ब्रह्म नहीं वे कुछ भी नहीं हैं। पर वेदान्ती यह देखते हुए कि ऐसा अजीब और निर्युक्तिक सिद्धान्त लोगों की समझ में बैठ नहीं सकता है बतला देते हैं कि यद्यपि सचमुच मनुष्य नहीं हैं तौभी वे व्यवहारिक सत्ता रखते हैं और इस कारण यह कहा जा सकता है कि मनुष्य एक प्रकार से तो है पर स्मरण रखना चाहिये कि हम केवल माया में फंसकर ऐसा समझते और कहते हैं पर यह बात यथार्थ नहीं है ।

संक्षेप में मनुष्य के विषय में वेदान्त मत कुछ ऐसा दिखलाई देता है। ब्रह्म किसी न किसी प्रकार से माया या अविद्या से मिल जाता है या सचमुच मिल गया है । (क्योंकि सदा से यह बात चली आई है) । माया कल्पित प्रपंच इसी रीति से फैल गया है कि यद्यपि यह नहीं कहा जा सकता है कि इस का कारण ब्रह्म है । तौभी यह भी नहीं कहा जा सकता है कि माया ने अपनी शक्ति से यह सब कुछ किया है । वास्तव में न तो यह प्रपंच ब्रह्म है न तो ब्रह्म का कार्य्य है तौभी यदि ब्रह्म न होता यह प्रपंच उत्पन्न नहीं हो सकता । और विशेष करके मनुष्य यद्यपि वह ब्रह्म नहीं है न ब्रह्म का बनाया हुआ है तौभी उस की मनुष्यता मानो एक प्रतिबिम्ब है जो बिना ब्रह्म की सत्ता के होने के हो नहीं सकती। अर्थात जहां लों वह मनुष्य दिखलाई देता या अपने तईं मनुष्य समझता है वहां तक वह कुछ नहीं है पर तौभी उस का कुछ न कुछ आधार तो होगा और वही आधार ब्रह्म है । या यों कहिये कि

ब्रह्म की सत्ता के कारण और माया या अविद्या के द्वारा मनुष्य दिखलाई देता है। यह दिखावट ब्रह्म की दिखावट नहीं है तौभी यदि ब्रह्म न होता यह दिखावट न होती। सचमुच केवल ब्रह्म ही है। जो कुछ और दिखलाई देता है वह वास्तव में है ही नहीं पर केवल माया की ठगाई से एक झूठा स्वप्न दिखलाई देता है।

यदि वेदान्तियों का मत कुछ ऐसा है तो उस मत के अनुसार मनुष्य क्या है। वह कुहासा या बुखार है जो सूर्य्यरूपी ज्ञान की किरणों से लोप हो जाता है। मनुष्यता की कोई महिमा नहीं रह गई है। वह सदा नहीं रहेगा। न तो मनुष्य आपस में कोई ऐसा सम्बन्ध रख सकते हैं जो योग्य है और स्थिर रहेगा न तो वे ईश्वर से कोई ऐसा सम्बन्ध रख सकते हैं। क्योंकि जो कुछ उस में यथार्थ है सो मनुष्य नहीं बरन ब्रह्म है और जो कुछ ब्रह्म नहीं है सो सचमुच नहीं है वह केवल एक झूठा स्वप्न है।

रामानुज का मत।

स्मरण रखना चाहिये कि सब वेदान्ती ऐसा मत नहीं मानते हैं। वे जो शंकराचार्य्य के अनुगामी हैं सो यही मत मानते हैं। पर वे जो रामानुज के पन्थ पर चलते हैं ऐसी शिक्षा स्वीकार नहीं करते हैं। वे बतलाते हैं कि मनुष्य सचमुच हैं और सदा मनुष्य ही रहेंगे। मनुष्य माया का सन्तान नहीं और कुहासा के समान नहीं है। मनुष्य एक स्वप्न नहीं है पर ब्रह्म की इच्छा के बरन उस की आज्ञा के अनुसार उत्पन्न हुआ है। वे

यह भी मानते हैं कि मनुष्य किसी न किसी प्रकार से ईश्वर से भिन्न हैं और भिन्न ही रहेंगे और यहां और सदा लों ईश्वर से ऐसा सम्बन्ध रखते और रखते रहेंगे कि वे उस में लौलीन होके अपनी मनुष्यता नहीं खोयेंगे पर ईश्वर के साथी होवेंगे।

जीव एक है और जीव ईश्वर है।

अब एक और बात का विचार करना चाहिये जो कदाचित किसी विशेष दर्शन का सिद्धान्त नहीं है पर तौभी दर्शनों से कुछ सम्बन्ध रखती है और अधिक करके साधारण लोगों के बीच प्रचलित है। हिन्दू समझते हैं कि जीव ईश्वर है चाहे वह जीव मनुष्य में हो या पशु में या वृक्ष में। वे कहते हैं कि सब वस्तुओं में किसी न किसी प्रकार से ईश्वर जीव होके मौजूद है। इस बात का वर्णन कठिन है इस कारण से कि यह विशेष करके एक सुनी सुनाई बात है जो बिना सोचे बिचारे लोग मान लेते है। वे मन लगाके इस का निर्णय नहीं करते कि इस सिद्धान्त का क्या ठीक २ अर्थ है और इस का क्या प्रमाण है। यदि उन का कहना ठीक है तो उस जीव की क्या विशेषता है। कोई नहीं बतला सकता है। मालूम होता है कि वह जो न केवल मनुष्य और पशु में पाया जाता है पर वृक्ष में और पाषाण में भी है सो न ईश्वर है और न जीव है पर केवल एक प्रकार की या नाना प्रकार की शक्तियां हैं जिन के कारण या जिस के कारण तत्व या परमाणु एक ढेला या पिण्ड में एकट्ठे रहते हैं पर हम क्यों ऐसी शक्ति को जीव

कहें। और क्यों उस को ईश्वर कहें। और फिर वह जीव जो वृक्ष में और वह जो पशु में और वह जो मनुष्य में है हम क्योंकर उन तीनों को एक ही जीव मान सकते है। बात तो सच है कि जीव के कई एक लक्षण जो वृक्ष में पाये जाते हैं पशु में और मनुष्य में भी पाये जाते है। और यह बात भी सच है कि कई एक लक्षण जीव के जो वृक्ष में नहीं पाये जाते हैं पर पशु में हैं मनुष्य में भी मिलते हैं पर इन लक्षणों को छोडके कई एक मनुष्य मे पाये जाते हैं जो न वृक्षों में और न पशुओं में है। और यह स्पष्ट होता है कि मनुष्य का जीव वृक्ष के और पशु के जीव से भिन्न है।

मै समझता हूं कि साधारण लोगों की समझ में यह बात--अर्थात कि सब जीव एक ही हैं—किसी न किसी गुप्त रीति से बैठ गई है। मेरी समझ में कदाचित इसी प्रकार से हुई होगी (चाहे लोग मान लें या न मान लें समझें या न समझें)। वे यह खियाल करते हुए कि विना ईश्वर के बल और शक्ति से कोई पदार्थ हो नहीं सकता और रह नहीं सकता यह समझने लगे कि ईश्वर की शक्ति न केवल उन सब पदार्थों और जीव-धारियों का कारण ही है पर उन में व्याप्त और मौजूद है और यह शक्ति चाहे पाषाण में या वृक्ष में चाहे पशु या मनुष्य में हो सचमुच ईश्वर ही है और जीव है।

पर सब जीवधारियों का जीव एक प्रकार का जीव कहना और इन नाना प्रकार के जीवों को एक प्रकार की शक्ति समझना और इस शक्ति को ईश्वर जानना निर्युक्तिक बाते हैं। मान लिया है कि ईश्वर की शक्ति

जीवधारियों का कारण है पर जीव में बहुत सी शक्तियां हैं और भिन्न २ जीवधारियों में भिन्न २ शक्तियां हैं। वृक्षों में बढ़ने की फल देने की शक्तियां हैं और ये शक्तियां पशु और मनुष्य में भी हैं। पर पशुओं में और २ शक्तियां हैं जो वृक्षों में नहीं हैं जैसे कि चलने की और आप से आप बोलने की और फिर मनुष्यों में नाना प्रकार की और शक्तियां हैं जो न वृक्षों में और न पशुओं में पाई जाती हैं। क्या कोई पशु पुस्तक लिख सकता या पढ़ सकता है या घड़ी बना सकता या आग सुलगाके अपना खाना पका सकता है। या किसी की समझ में यह है कि पशु ईश्वर को जानते और उस की आराधना करते और अपने तईं पापी समझके अपनी मुक्ति के लिये खोजते रहते हैं। सब जीवधारी कुछ न कुछ शक्ति रखते हैं पर वे शक्तियां एक प्रकार की नहीं परन्तु अनेक प्रकार की है और फिर सब शक्तियां ईश्वर ही से उत्पन्न होती हैं पर वे ईश्वर नहीं हैं। ईश्वर सब शक्तियों का आधार है और जीव शक्तियों पर निर्भर है पर यह कहना कि सब जीव एक ही जीव हैं और यह जीव न केवल ईश्वर का उत्पन्न किया गया है बरन आप ईश्वर है सर्वथा बेठिकाने की बात है और स्वीकार करने के योग्य नहीं।

हिन्दू भी मनुष्य को मनुष्य समझते हैं।

इस बात को छोड़के दूसरी बात पर ध्यान देना चाहिये जो बहुत शुकर करने की है। हिन्दू बहुत सी बातें मान लेते हैं जो मानो सब लोग मान लेते हैं।

यद्यपि वे किसी हिन्दूशास्त्र से नहीं सिखलाई गई हैं और न केवल परम्परा की सुनी सुनाई बातें हैं पर स्वाभाविक रीति से मन ही मन में गढ़ी हुई हैं। और अधिक लोग इन बातों के अनुसार माना वे सोचे अपने जीवन को व्यतीत करते हैं। मेरा अर्थ यह है कि वेदान्तियों के और दूसरे दर्शनकर्त्ताओं के कई एक सिद्धान्त हैं जिन के बारे में लोग कहते हैं कि हम इन सिद्धान्तों को मानते हैं पर वे सचमुच दिलही से और कर्म्मों मे नहीं मानते हैं। दो एक बाते देखिये। प्रायः हिन्दू बतलाते हैं कि हम पराधीन हैं कर्म्म के वश में फंसके हम सर्वथा लाचार हैं जो होगा सो होगा हम कुछ नहीं कर सकते हैं। पर मालूम होता है कि अधिक लोग जो ऐसा कहते हैं बहुत कुछ करते है और उन लोगों के समान चेष्टा और उद्योग करते हैं जो मान लेते है कि हम कुछ स्वतंत्र और स्वाधीन हैं। अर्थात जब कुछ करने की आवश्यकता पड़ती वे शास्त्र के सिद्धान्त भूलके सुख प्राप्त करने को और दुःख दूर करने को परिश्रम करते हैं।

एक और बात लीजिये बहुत से हिन्दू यह कहा करते हैं कि मुझ मे तुझ में सब में ईश्वर व्याप्त है जो कुछ हम से या और किसी से किया जाता सो हमारी करणी नहीं पर ईश्वर की है। पर लोग सचमुच मनही मन में यह सिद्धान्त नहीं मानते हैं। यदि कोई उन को गाली दे या उन को मारे या उन के यहां से किसी वस्तु को चोरी करे वे यह नहीं समझते हैं कि ईश्वर ने माना अवतार लेके मुझ को गाली दिई या मारा या

चोरी किई पर दूसरे लोगों के समान जानते हैं और मानते भी हैं कि अमुक मनुष्य ने यह किया या वह किया ।

हमारे हिन्दू भाइयों के वारे में यह कहावत ठीक है कि दिखलाने के दांत और हैं पर काम करने के और । वे नाना प्रकार के सिद्धान्त वतलाके कहते हैं कि हम इन को सच मानते हैं पर जब कुछ करना पड़ता तब वे सिद्धान्तों को भूलके और स्वाभाविक वुद्धि पर भरोसा रखके उसी रीति से विचारके करते जैसे कि और लोग करते हैं जो उन सिद्धान्तों को झूठ समझते हैं ।

जो मनुष्य है सो मनुष्य है और चाहे वह अपने वारे में यह कहे या वह कहे या शब्द लेके वतलावे कि मुझ में जो वोलता सो ईश्वर है या कहे कि कर्म के बन्धन में फंसके मै किसी प्रकार से स्वाधीन नहीं हूं तौभी वह प्रायः करके इन सब सुनी सुनाई वातों को भूलके अपने तईं उसी प्रकार का मनुष्य समझता है जैसे कि और लोग अपने तईं समझते हैं अर्थात वह जानता है कि मैं कुछ पराधीन हूं कुछ स्वाधीन और दूसरे लोगों के समान मै कुछ ईश्वर पर कुछ दूसरे लोगों पर (कम या अधिक) निर्भर हूं तौभी मुझे कुछ स्वतंत्रता है । वहुत सी वाते हैं जिन को मैं कर सकता हूं या छोड़ सकता और मुझे अपनी करणी के अनुसार फल भोगना पड़ेगा ।

मसीही मत ।

अव विचार करना चाहिये कि मसीही वैवल में मनुष्य के वारे में क्या वर्णन किया गया है । स्मरण रखना चाहिये कि वैवल में कहीं यह नहीं लिखा है

कि मनुष्य के विषय में बैबल का सिद्धान्त यह है तौभी इधर उधर पढ़ने से मालूम हो सकता है कि सब लिखनेवालों का मत बड़ी २ बातों में कुछ समान है। इस बात के साथ एक और बात भी न भूलना चाहिये कि हर एक बात में सब का सिद्धान्त ठीक २ एक सा नहीं है। उपदेशक की पुस्तक पढ़िये और तब योहन के सुसमाचार और पहिली पत्री को पढ़िये तब नाना प्रकार के भेद दिखलाई देते हैं। इस का कारण यह है कि सब पुस्तकें एक ही समय में नहीं लिखी गई थीं और मनुष्य के बारे में जैसे कि और २ बातों के बारे में ईश्वर ने धीरे धीरे पूरी सच्चाई दिलाई थी। केवल योशु मसीह के आने से यह बात खुलके प्रगट हुई है कि मनुष्य क्या है और उस का परमार्थ क्या है।

मनुष्य सदा से नहीं है।

१. एक बात बहुत स्पष्ट है मनुष्य सदा से नहीं है और आप से आप नहीं परन्तु परमेश्वर का वनाया हुआ है। आगे हम देख लेंगे कि परमेश्वर और मनुष्य के बीच ऐसा सम्बन्ध है कि मनुष्य ईश्वर का सन्तान कहने के योग्य है। पर यहां मैं यह बात दिखलाना चाहता हूं कि मसीही मत उन सब मतों से भिन्न है जिन में यह वर्णन है कि मनुष्य ईश्वर है या ईश्वर का अंश। मैं समझता हूं कि बैवल में कहीं कोई ऐसी बात नहीं मिल सकती जिस का यह अर्थ हो सकता है कि जिस को हम मनुष्य कहते हैं वह सचमुच ईश्वर है जो केवल माया की ठगाई से मनुष्य दिखलाई देता है।

न कहीं यह बात है कि मनुष्य या पुरुष सनातन से है। आरम्भ से लेके अन्त लों यह बात मानी जाती है कि किसी विशेष समय ईश्वर ने मनुष्य को बनाया।

बात तो सच है कि एक बार ईश्वर ने मनुष्यरूप धारण किया वरन मनुष्य बन गया अर्थात यीशु मसीह में पर यह बात भिन्न है और आगे इस का विचार किया जायगा।

मनुष्य पशुओं से भिन्न है।

२. तौभी न केवल मनुष्य सब वस्तुओं से भिन्न है जो जीव नहीं रखते हैं पर और सब जीवधारियों से भिन्न है। बैबल में (उत्पत्ति की पुस्तक १ : २६) में लिखा है कि "ईश्वर ने कहा कि हम आदम को अपने स्वरूप में अपने समान बनावें" और फिर (२ : ७) "परमेश्वर ईश्वर ने भूमि की धूल से आदम को बनाया और उस के नथनों में जीवन का स्वास फूंका"। इन दो पदों का पूरा अर्थ कौन बतला सकता है। पर अच्छे प्रकार से यह बात खुल जाती है कि मनुष्य ईश्वर से ऐसा विशेष सम्बन्ध रखता है जो पशु नहीं रख सकता है। मनुष्य मानो ईश्वर का सन्तान है हम यह नहीं कह सकते हैं कि जैसे माता पिता के बीज से पुत्र उत्पन्न होता है वैसे ईश्वर के बीज से मनुष्य उत्पन्न हुआ तौभी मनुष्य न केवल ईश्वर का बनाया हुआ है पर उस के स्वभाव और आत्मा में कुछ न कुछ सम्भागी है जिस के कारण यह कहा जा सकता है कि ईश्वर ने उस के नथनों में जीवन का स्वास फूंका अर्थात अपनी ओर से उस में एक विशेष प्रकार का जीवन भर दिया

जो ईश्वर नहीं है तौभी ईश्वर से विशेष सम्बन्ध रखता है। और इस में कुछ सन्देह नहीं कि मनुष्य में ऐसा चैतन्य और नाना प्रकार के आत्मिक गुण पाये जाते हैं कि जिन से मनुष्य और सब पशुओं से सर्वथा भिन्न दीख पड़ता है। विशेष करके उस में धर्म्म अधर्म्म विवेक करने की और ईश्वर को पहिचानने की शक्ति पाई जाती है। हम यह नहीं कहते हैं कि पशुओं में किसी प्रकार का चैतन्य नहीं है पर वह परंपरा की रीति से मिलता जाता है उन की बुद्धि युग युग नहीं बढ़ती जाती है पर जैसी की तैसी बनी रहती है। मनुष्यों में बुद्धि बढ़ती होती जाती है।

मनुष्य की शक्तियां।

मनुष्य में क्या २ तत्व या गुण या शक्तियां हैं कि जिन के रखने के कारण वह मनुष्य गिना जाता है। जब लों वह इस संसार में रहता वह पशुओं के समान शरीर रखता है और जीव भी रखता है। पशुओं में और मनुष्यों में एक शक्ति है चाहे उस को समझ कहिये या बुद्धि या चैतन्य। चन्द लोग कहते हैं कि यह शक्ति जो मनुष्य में है उसी से सर्वथा भिन्न है जो पशुओं में पाई जाती है। पर ऐसा कहना प्रामाणिक ठहराना कुछ कठिन है। मान लिया कि चैतन्य में बहुत भेद हैं क्योंकि यह शक्ति मनुष्य में ऐसी तीक्ष्ण है जो कभी पशुओं में नहीं पाई जाती है चाहे घोड़े में या कुत्ते या हाथी में। पर भिन्नता की विशेष सीमा का बखान करना अत्यन्त कठिन है। पशु स्मरण रखते है वे कुछ न कुछ

आनेवाली बातों की बाट जोहते हैं। वे यह समझ सकते हैं कि ऐसा २ करने से ऐसा २ फल निकलेगा। वे लोगों को पहचानते एक से शत्रुता और एक से मित्रता रखते हुए वे डरते और खुश होते हैं क्रोधित और शोकी हो जाते हैं। वे मनुष्य की बोली कुछ पहचानते हैं और कदाचित आपस में बातचीत कर सकते हैं। पर वे लिखना पढ़ना नहीं सीख सकते हैं और लिखने पढ़ने के द्वारा मनुष्य की बुद्धि बहुत तीक्ष्ण हो जाती है और मनुष्य नाना प्रकार के ज्ञान और विद्या और शिल्प प्राप्त कर सकते जो पशु नहीं सीख सकते हैं पशु परंपरा की रीति से सब कुछ करते पुष्ट २ वे उसी प्रकार से करते हैं जैसे कि होता आया है कुछ तरक्की नहीं है। यदि मनुष्य और पशुओं के चैतन्य की विशेष भिन्नता का पूरा वर्णन नहीं किया जा सकता है तौभी भिन्नता तो है और वह छोटी भिन्नता नहीं है।

मनुष्य का आत्मा।

पर मैं समझता हूं कि मनुष्यों में और पशुओं में एक विशेष भिन्नता है मनुष्य में आत्मा है। मनुष्य न केवल जीव और ज्ञान बुद्धि रखता है पर आत्मा जिस के द्वारा वह परमेश्वर को पहचान सकता और उस से प्रेम रख सकता। वह धर्म्म और अधर्म्म के भेद का विवेक कर सकता है और परलौकिक बातों की बाट जोहता है और उन पर सोच बिचार करके अपने जीवन की वृत्तियां बदल सकता। जहां लों हमें मालूम होता है आत्मा और आत्मा की शक्तियां पशुओं में नहीं पाई जाती हैं।

हिन्दू मत के समान मसीही मत का वर्णन है कि मृत्यु मनुष्य का अन्त नहीं है पर वह यह नहीं बतलाता कि बार २ जन्म लेना है ऐसा नहीं पर मरने के अनन्तर मनुष्य परलोक में जीता रहेगा।

आत्मा माता पिता से मिलता है या नहीं।

मसीहियों के बीच बहुत दिनों से इस बात के बारे में कुछ बाद बिवाद हो रहा है कि शारीरिक रीति से मनुष्य अपने माता पिता से उत्पन्न होता है पर उस को आत्मा कहां से मिलता। चन्द लोग कहते कि आत्मा माता पिता से उत्पन्न नहीं होता है पर एक २ शरीर के लिये परमेश्वर एक २ आत्मा अपनी ओर से उत्पन्न करके भेज देता है। दूसरे लोग कहते कि ऐसा नहीं। आत्मा और शरीर दोनों के दोनों माता पिता से उत्पन्न होते हैं। इस बात का निर्णय करना हमारे लिये कुछ कठिन है। दोनों सिद्धान्तों के पक्ष में बहुत कुछ कहा जा सकता है। पर मैं समझता हूं कि दूसरे के पक्ष में अधिक दृढ़ हेतु पेश किये जा सकते हैं। निस्सन्देह मनुष्य के आत्मा और शरीर दोनों परमेश्वर के बनाये हुए हैं पर यह क्यों नहीं सम्भव है कि जैसे कि शरीर वैसे आत्मा भी माता पिता के द्वारा उत्पन्न किया जाय। यद्यपि मनुष्य एक प्रकार से अलग २ है तौभी वे आपस में एक दृढ़ सम्बन्ध रखते हैं और जैसे कि शरीरों में भिन्नता है तौभी समानता वैसे ही मनुष्यों में आत्मिक रीति से न केवल भिन्नता पर एक आश्चर्य्य रीति की समानता है।

रोमियों ५ और ६ पर्ब्बों को और १ करिन्थियों १५

पर्ब्ब पढ़ लीजिये एक पद में (१ करिन्थियों १५: २२) लिखा है कि "जैसे कि आदम में सब लोग मरते हैं तैसे ही ख्रीष्ट में सब लोग जिलाये जायेंगे" यहां न केवल शारीरिक सम्बन्ध का बर्णन है बरन आत्मिक भी और यह बात दृढ़ प्रामाणिक दिखलाई देती है कि आत्मा न केवल अलग २ हैं पर मनुष्य एक आत्मा में सम्भागी हैं वे सब के सब न केवल शारीरिक पर आत्मिक रीति से भी एक मनुष्यता में सम्भागी हैं और मैं समझता हूं कि यह पूरी मनुष्यता—आत्मा और शरीर—माता पिता के द्वारा सब लोगों को मिलती है। तौभी परमेश्वर के अनुग्रह से प्रभु यीशु हमारी मनुष्यता में सम्भागी हुआ है। और जैसे कि और २ मनुष्यों के द्वारा हमें नाना प्रकार की हानियां हुई हैं वैसे ही वरन उस से बहुत बढ़के प्रभु यीशु के द्वारा हमें ऐसी आशीसें मिल सकती हैं जिन का पूरा बर्णन सम्भव नहीं है।

मनुष्य अपने पाप के द्वारा बहुत नीच हो गया है पर अब लों उस की सब महिमा जाती न रही। और प्रभु यीशु के अनुग्रह से वह फिर ऊंच पद पा सकता। अच्छे प्रकार से लिखा हुआ है कि हे ईश्वर "मनुष्य क्या है कि तू उस की सुध लेता है। मनुष्य का पुत्र क्या है कि तू उस पर दृष्टि करता है। तू ने उस को कुछ थोड़ा सा दूतों से छोटा किया। तू नें उसे महिमा और आदर का मुकुट पहिनाया। और उस को अपने हाथों के कार्य्यों पर प्रधान किया। तू ने सब कुछ उस के चरणों के नीचे आधीन किया"।

---

३. विश्व।

इस व्याख्या में न केवल पृथिवी या भूमण्डल या संसार की चर्चा होगी पर समस्त विश्व की जिस में न केवल हमारी पृथिवी है पर सूर्य्य और चन्द्रमा और तारागण सब कुछ हैं जो पांचों तत्त्व से बनाये गये हैं। हिन्दी में कई एक शब्द हैं जो कभी २ एक अर्थ पर कभी दूसरे पर काम में लिये जाते हैं। जगत कभी इस पृथिवी के अर्थ पर कहा जाता है कभी समस्त विश्व के लिये। मैं इस व्याख्या में पृथिवी भूमण्डल संसार और जगत चारों इस पृथिवी के लिये जिस में हम घूमते फिरते हैं काम में लाऊंगा और केवल बिश्व उस समस्त जग या जगों के लिये जिस में परमेश्वर की सारी सृष्टि समाई गई है।

पहिले पहिल कदाचित हमारा यह सोच होगा कि यह ऐसा विषय नहीं है जो एक पूरे व्याख्या का विषय होने के योग्य है। पर सचमुच यह बहुत भारी विषय है। एक बात तो यह है कि यह पृथिवी वही स्थान है कि जिस में हम रहते और जिस के बारे में हम न केवल अनुमान करके वरन अनुभव करके बहुत कुछ जानते हैं। और एक और बात यह है कि हम इस में जन्म लेके अपने जीवन को व्यतीत करते हैं जिस के अनुसार हमारा भविष्यत्काल चाहे सुख का चाहे दुःख का हो जायगा। इन कारणों से यह अत्यन्त उचित है कि हम निर्णय करें कि

१. यह भूमण्डल यह विश्व क्या है।

२. वह ईश्वर से क्या सम्बन्ध रखता है।

३. मनुष्य का भूमण्डल से क्या सम्बन्ध है।

पृथिवी या विश्व क्या है।

हमारे लिये इस समय कुछ आवश्यकता नहीं है कि हम विश्व के मूल तत्त्वों या परमाणुओं के बारे में पूछपाछ करें कि एक है या पांच है या सत्ताईस या कितने हैं। और यह भी हम नहीं पूछेंगे कि वे किस प्रकार से मिलाये गये हैं। ऐसी विद्या उचित और अच्छी है पर इन व्याख्याओं के अभिप्राय से कोई विशेष सम्बन्ध नहीं रखती है। पर हमारे लिये यह पूछना बहुत ही अवश्य है कि विश्व सचमुच है या केवल एक खियाली बात है। क्या यह संसार और जो कुछ उस में है माया है स्वप्न के समान है। क्या वह तब लों दिखलाई देता है जब लों मनुष्य अज्ञानी रहते पर जब वे मानो नींद से जाग उठके ज्ञानी हो गये तब यह बात मालूम हुई कि वास्तव में संसार कुछ नहीं है।

हिन्दू साधारण मत।

साधारण हिन्दुओं में यह मत बहुत प्रचलित है कि विश्व तो ईश्वर है। हम इस को एक विशेष सिद्धान्त नहीं कह सकते हैं क्योंकि लोग सोच बिचारके इस बात को नहीं मानते हैं न संयुक्तिक रीति से बतलाते हैं। तौभी वे कहते हैं कि सूर्य्य और चांद और तारागण और गंगा और पहाड़ इत्यादि ईश्वर के अंग हैं और यह समझके हिन्दू उन की पूजा करते हैं। कभी वे कहते हैं कि ईश्वर इन में है या इन में व्याप्त है कभी कि ये सब वस्तुएं ईश्वर ही हैं। जो कुछ है सो ईश्वर

ही है और जो कुछ ईश्वर नहीं है सो है ही नहीं। हम ऐसी बातों को सिद्धान्त नहीं कह सकते हैं इस कारण से कि अधिक करके वे लोग जो ऐसी २ बातें कहा करते हैं केवल सुनी सुनाई दुहराते हैं वे कभी यह कभी वह मानते। तौभी इस में कुछ सन्देह नहीं कि साधारण लोगों के बीच ऐसे २ खियाल प्रचलित हैं और पुराणों और उपनिषदों में बहुत से ऐसे वचन हैं।

स्मरण रखना चाहिये कि उन लोगों के बीच जो लिखे पढ़े नहीं हैं और उन में भी जो अधिक लिखे पढ़े नहीं नाना प्रकार के मत फैलाये हुए हैं जो आपस में मेल नहीं रखते। नाना प्रकार के ऐसे २ मत हैं जो प्राचीन दिनों में भांति २ के जंगली लोग माना करते थे जो केवल भूतों को और ग्राम देवताओं को मानते थे। फिर उन मतों के साथ और २ मत मिलाये जाते थे और इन मिलाये हुए मतों का संग्रह हिन्दू मत कहलाता है वे मत एक नहीं थे पर अनेक। और फिर उन के साथ वेदान्तियों और २ दर्शनों के कई एक सिद्धान्त कुछ न कुछ बिगड़े हुए होके मिल गये हैं। साधारण लोग उन में से अधिक या कम लेके कुछ न कुछ माना करते हैं और इस पर बिचार नहीं करते कि वे आपस में बिरुद्ध हैं या नहीं। कुछ आश्चर्य्य की बात नहीं है कि वे कभी कहते कि संसार तो ईश्वर है कभी कि ईश्वर उस में व्याप्त है। कभी कि संसार सचमुच नहीं है और कभी इसी तरह से बोलते हैं कि मानो वे मसीहियों के साथ मान लेते कि संसार है और उस का सृजनहार ईश्वर है।

वेदान्त मत।

संसार या विश्व के बारे में वेदान्तियों का क्या सिद्धान्त है। संक्षेप में (या विस्तारपूर्वक) इस बात का वर्णन करना अत्यन्त कठिन है। जहां तक मेरी समझ में वेदान्ती मत पहुंचा है वह कुछ ऐसा है। परब्रह्म परमेश्वर सदा से है और सदा लों रहेगा उस में किसी प्रकार का बिकार नहीं वह न सुनता न सुनाता है न करता न कराता न प्रेम रखता न घिन्न न दया करता न दण्ड देता क्योंकि ये सब बाते बिना कुछ करने के बनती नहीं और किसी प्रकार का करना बिना बिकार होने के हो नहीं सकता। वे इस कारण ब्रह्म को सृजनहार नहीं मान सकते हैं।

माया या अविद्या भी सदा से है वह ब्रह्म नहीं न ब्रह्म की बनाई हुई है क्योंकि ब्रह्म कर्त्ता नहीं है। किसी न किसी प्रकार से माया की ठगाई के द्वारा एक आश्चर्य्य रीति की मृगतृषा या मरीचिका या सराब दिखलाई देती है। बिना ब्रह्म के होने के यह मृगतृषा हो नहीं सकती तौभी ब्रह्म उस का कर्त्ता नहीं है। एक प्रकार से ब्रह्म इस माया का आधार है क्योंकि यदि ब्रह्म न होता यह संसार भी न होता तौभी ब्रह्म जान बूझके उस का आधार नहीं है क्योंकि ब्रह्म में किसी प्रकार की अभिलाषा नहीं और इस कारण उस की इच्छा से नहीं है कि यह मायारूपी मृगतृषाकल्पित संसार दिखलाई देता है। और एक और आश्चर्य्य की बात यह है कि न केवल यह संसार जो दिखलाई देता है

माया कल्पित है पर वे जो इस को देखते हैं माया कल्पित भी हैं बरन इस मृगतृषा के अंश हैं । यहां लों कि वे अपने तईं मनुष्य समझते हैं और परब्रह्म से भिन्न और संसार को "हैं" समझते तौभी वह नहीं है । वे माया के बश में होके ऐसी २ बातें समझते हैं । पर समझ लीजिये कि जिस प्रकार से ब्रह्म मनुष्य का आधार है उसी प्रकार से वह उन सब वस्तुओं का आधार नहीं जिन में चैतन्य नहीं है । जब मनुष्य ज्ञानी हो जाते तब वे इस आधार के विषय में समझ लेते हैं और कह सकते हैं कि न तो मैं मनुष्य हूं न ब्रह्म से भिन्न हूं न वास्तव में कोई संसार है केवल ब्रह्म है मै ब्रह्म हूं और ब्रह्म को छोड़के कुछ है ही नहीं तौभी जब लों कि वह मनुष्य न मर जाय तब लों संसार दिखलाई देता है और मनुष्य कुछ न कुछ मनुष्य मालूम होता है पर आधार पहचानके वह जानता है कि ये सब केवल मृगतृषा है । जो सत्ता उन की है सो पारमार्थिक सत्ता नहीं पर केवल व्यवहारिक सत्ता है । और उस ज्ञानी मनुष्य के मर जाने पर यह व्यवहारिक सत्ता का दिखलाई देना लोप हो जायगा और तब न मनुष्य है न संसार पर केवल अविकार परब्रह्म है और सचमुच उस को छोड़के न कभी कुछ था न है न होगा ।

अब विचार कीजिये कि ऐसे मत के अनुसार हम विश्व को क्या समझें । वह सचमुच है ही नहीं । जहां लों वह व्यवहारिक सत्ता रखता है वह ब्रह्म का बनाया हुआ नहीं पर माया या अविद्या का । और वह ब्रह्म की इच्छा से बनाया नहीं गया है क्योंकि ब्रह्म की इच्छा

नहीं है । इस कारण ब्रह्म का कोई अभिप्राय संसार या विश्व के द्वारा पूरा नहीं हो सकता है यदि संसार न होता और मनुष्य न होता तो अच्छी बात होती वे केवल माया कल्पित हुए और उन के लोप हो जाने पर मुक्ति होती है ।

ध्यान देना चाहिये कि मैं बराबर "ब्रह्म" कहता हूं "ईश्वर" नहीं कहता क्योंकि वेदान्तियों के मत में ईश्वर ब्रह्म नहीं है । ईश्वर मनुष्य के समान माया कल्पित है ईश्वर भी पारमार्थिक सत्ता नहीं रखता पर केवल व्यवहारिक । वह भी मृगतृषा है वह दिखलाईं देता है पर सचमुच नहीं है और लोप हो जायगा ।

मसीही मत ।

आनन्द पूर्वक मैं अब विश्व के बारे में मसीही मत का कुछ वर्णन करता हूं ।

बैबल में विश्व की उत्पत्ति का वर्णन बहुत विस्तार पूर्वक नहीं लिखा है तौभी कुछ वर्णन है और बार २ उस की चर्चा है ।

स्मरण रखना चाहिये कि जिस प्रकार से आज कल विद्यावान चेष्टा करते हैं कि वे निर्णय करके समझ लें कि संसार की सब वस्तुओं और जीवधारियों की उत्पत्ति किस क्रम से और किस २ रीति से होती जाती थी उसी प्रकार से बैबल के लेखक वर्णन नहीं करते हैं ऐसी २ बातों से उन का कोई विशेष अभिप्राय नहीं है । उन का अभिप्राय यह है कि वे दिखलावें कि ईश्वर कौन है और कैसा है और

वे यह भी अच्छे प्रकार से बतलाते हैं कि यह संसार आप से आप नहीं बन गया और न देवताओं का बनाया हुआ है और न माया कल्पित है पर उस का सृजनहार परमेश्वर है और अब लों समस्त विश्व उसी के बश में है ।

विश्व के होने का क्रम और ढंग ।

आजकल एक सिद्धान्त है जो बहुत से विद्यावान मान लेते हैं अर्थात् "एवोल्यूशन" जिस का अभिप्राय यह है कि विश्व के भिन्न २ खण्ड और मण्डल और इस पृथिवी के नाना प्रकार की वस्तुएं और पशु पक्षी इत्यादि अलग २ होके ईश्वर के हाथ से नहीं सृजे गये थे पर वे क्रम २ से धीरे २ बदलते २ एक २ करके दूसरों २ से उत्पन्न होते जाते थे । इन विद्वानों में जो इस सिद्धान्त को मानते हैं विशेष करके दो प्रकार के हैं । चन्द ऐसे हैं जो यह बतलाते हैं कि यह "एवोल्यूशन" आप से आप होता जाता है । वह कड़ोड़ों बरसों से क्रम २ से होता आया है और कड़ोड़ों बरसों तक होता रहेगा । प्रकृति या तत्वों में किसी न किसी प्रकार की ऐसी शक्ति थी कि जिस के कारण यह सृष्टि बन गई थी । और यह शक्ति न तो परमेश्वर है न जहां तक हमें मालूम हो सकता है परमेश्वर की बनाई हुई या चलाई हुई है । ऐसे विद्यावान लोग अपने तईं नास्तिक नहीं समझते हैं पर यह कहते हैं कि ईश्वर हो या न हो यह हम नहीं कह सकते हैं पर हमारी समझ में यह "एवोल्यूशन"

आप से आप चलता है और संसार के द्वारा हमें कुछ नहीं मालूम हो सकता है कि कोई ईश्वर है या नहीं पर किसी सृजनहार को आवश्यक्ता नहीं है क्योंकि "एवोल्यूशन" सब कुछ कर सकता है।

पर बहुत से और विद्यावान हैं जो "एवोल्यूशन" को (कम या अधिक) मान लेते हैं। वे कहते हैं कि हम इस बात को स्वीकार करते हैं कि एक ऐसी शक्ति थी और है कि जिस के द्वारा विश्व और संसार की सृष्टि होती जाती है। कुछ आवश्यक्ता नहीं है कि ईश्वर सब वस्तुओं को अलग २ करके बनावे क्योंकि एक २ प्रकार की वस्तु और वृक्ष और पशु और पक्षी उस शक्ति के द्वारा क्रम २ से दूसरों से उत्पन्न होते आये हैं। धीरे २ बदलते २ भिन्न २ प्रकार के पदार्थ और जीवधारी बन गये हैं जो अब विश्व में उपस्थित हैं। पर ये विद्यावान कहते हैं कि पहिले पहिल ईश्वर ही ने इस शक्ति को सृजा और ईश्वर ही की बुद्धि और बल और प्रबन्ध से यह अद्भुत "एवोल्यूशन" होता जाता है। "एवोल्यूशन" कोई सृजनहार नहीं और आप से आप कुछ नहीं कर सकता है वह केवल एक नाम है उन सब नियमों और प्रबन्धों का जिन के द्वारा परमेश्वर ने संसार को बनवाया। ये लोग कहते हैं कि हम दिल ओ जान से इस बात को स्वीकार करते हैं कि इस विश्व का सृजनहार परमेश्वर है और बिना उस के बल और बुद्धि और अनुग्रह के कोई वस्तु और कोई पशु या मनुष्य नहीं बन सकता और न बन गया है। पर ये प्रायः फिर कहते हैं कि जिस २ क्रम से और जिस २ रीति से सब सांसारिक

वस्तुएं बन रही हैं इन बातों का बर्णन बैबल में नहीं है पर बिद्यावानों के द्वारा धीरे २ मालूम हो जाती हैं।

यह एक लम्बी चौड़ी बात है और बिस्तारपूर्वक उस का बर्णन किया नहीं जा सकता है। पर यह समझ लीजिये कि चाहे एक २ प्रकार की बस्तु और हर एक प्रकार के पशु अलग २ बनाये जाये चाहे वे सब धीरे धीरे दूसरों के द्वारा बनाये जाये तौभी बनानेवाला ईश्वर है।

"एवोल्यूशन" का मत एक नहीं नाना प्रकार के मत हैं। चन्द लोग ऐसे हैं जो सर्बथा नास्तिक हैं और बतलाते कि ईश्वर तो है ही नहीं दूसरे लोग हैं जो कहते कि किसी को मालूम नहीं कि ईश्वर है या नहीं पर देखने में विश्व को बनाने के लिये ईश्वर की कुछ आवश्यक्ता नहीं है केवल शक्ति है जो कदाचित सदा से है। फिर और लोग हैं जो बतलाते हैं कि अवश्य ईश्वर है और पहिले उस ने विश्व को बनवाया पर बनाके उस ने उस को छोड़ दिया कि वह आप से आप चले और "एवोल्यूशन" के द्वारा भान्ति २ और प्रकार २ के पदार्थ और जीवधारी उत्पन्न होते जाये। फिर और लोग हैं जो कहते कि ऐसा नहीं ईश्वर ने उस को नहीं छोड़ दिया तौभी ऐसी २ शक्तियां उस में रख दिई हैं कि उस के ठहराये हुए प्रबन्ध के अनुसार "एवोल्यूशन" होता जाता है और कुछ आवश्यक्ता नहीं कि ईश्वर हर एक अलग प्रकार की बस्तु बनावे।

मै समझता हूं कि जब लों कि विद्यावान स्वीकार

करें कि परमेश्वर सृजनहार है और सृष्टि उस के प्रबन्ध के अनुसार हुई है तब लों "एवोल्यूशन" में मसीही मत के विरुद्ध कोई विशेष बात नहीं है। क्योंकि वे कह सकते हैं कि जैसे कि पहिले बीज होता है तब उस के जमने पर पौधा उत्पन्न होता है और वह बढ़ते २ बड़ा वृक्ष हो जाता जिस में बड़ी २ डालियां और फूल और फल होते हैं। कुछ न कुछ उसी प्रकार से पहिले ईश्वर ने मानो विश्व का बीज सृजा और धीरे २ विश्व और उस का सर्वस्व क्रम २ से उत्पन्न हुआ है। इस बात का निर्णय मैं न तो कर सकता हूं न करना चाहता हूं। वे रीतियां कैसी क्यों न हों जिन के द्वारा यह विश्व बनाया गया है वे हमारे विश्वास से कोई विशेष सम्बन्ध नहीं रखती हैं। हमारे लिये यही तो पूछना है कि किस ने यह सब कुछ बनाया और बनवाया और वह सृजनहार विश्व से और मुझ से क्या सम्बन्ध रखता है।

अब संक्षेप में उन सिद्धान्तों को दिखलाना चाहिये जो मसीही मत के हैं।

ईश्वर सृजनहार है।

१. परमेश्वर संसार और विश्व का सृजनहार है और यह विश्व सदा से नहीं है। वह आप से आप नहीं बना न देवताओं का बनाया हुआ है और वह माया कल्पित नहीं है। पहिले पहिल ईश्वर था और उस को छोड़के न और कोई और न और कुछ था ईश्वर कारणों का कारण है और जो कुछ हुआ या है या होगा

उसी का बनाया या बनवाया हुआ है। स्वीकार करना चाहिये कि ईश्वर ने पाप नहीं उत्पन्न किया तौभी अवश्य यह कहना पड़ेगा कि पाप उन जीवात्माओं के द्वारा उत्पन्न हुआ जो ईश्वर के बनाए हुए हैं। पाप-आत्मा कोई दूसरा ईश्वर नहीं है और वह सदा से नहीं है जो शक्ति उसी की है परमेश्वर की दिई हुई है।

स्मरण रखना चाहिये कि बैबल में स्वर्गीय दूतों के उत्पन्न होने का कुछ वर्णन नहीं है यह बात सर्वथा सभव है कि इस विश्व के होने से पहिले दूसरे विश्व थे जो ईश्वर ने उत्पन्न किये थे जब उत्पत्ति की पुस्तक में लिखा है कि "आरंभ में ईश्वर ने आकाश और पृथिवी को सृजा" तो यह समझना चाहिये कि आरंभ ही में जो कुछ हुआ सो ईश्वर ही का बनाया गया था और उस के अनन्तर इस सृष्टि के उत्पन्न होने का वर्णन है जो अब लों उपस्थित है।

विश्व के उत्पन्न होने का वर्णन जो उत्पत्ति की पुस्तक में लिखा है हम कैसे समझें? बहुत दिन नहीं बीते कि बहुत से लोग यह समझते थे कि उस वर्णन का एक २ शब्द ठीक २ उसी प्रकार से समझ लेना चाहिये जैसे कि वहां लिखा है। छः ही दिनों में सब काम हो चुका था ईश्वर मानो खड़ा होके या बैठके सचमुच एक २ बचन कहता था जैसे कि लिखा है इत्यादि। आजकल कदाचित बहुत कम मसीही मिलेंगे जो उत्पत्ति की पुस्तक के पहिले पर्ब्ब का ठीक २ शब्दो अर्थ मान लेते होंगे। वे समझते हैं कि लिखनेवाले ने साधारण बचनों और परिपाटियों से उस बात का वर्णन किया जो अलौकिक

है और हमारी समझ से और वर्णन करने से भी बाहर है। हम यह नहीं समझते हैं कि ईश्वर ने या तो इब्रानी भाषा में या संस्कृत में या और किसी भाषा में कहा कि "दिन और रात में विभाग करने को स्वर्ग के आकाश में ज्योति होवे" इत्यादि और यह भी नहीं समझते कि चौबीस घंटों में सूर्य्य और चांद बनाये गये थे। पर यह हम समझते और दिल ओ जान से मान लेते हैं कि इस पर्व्व का अभिप्राय सर्वथा ठीक है अर्थात् कि परमेश्वर ने विश्व को बनाया। और नये नियम में बतलाया गया है कि सृष्टि करना विशेष करके पिता का नहीं परन्तु पुत्र का काम था जैसे कि लिखा है (कलस्सियों १: १५, १६) ख्रीष्ट "तो अदृश्य ईश्वर की प्रतिमा और सारी सृष्टि पर पहिलौठा है क्योंकि उस से सब कुछ सृजा गया वह जो स्वर्ग में है और वह जो पृथिवी पर है दृश्य और अदृश्य क्या सिंहासन क्या प्रभुताएं क्या प्रधानताएं क्या अधिकार सब कुछ उस के द्वारा से और उस के लिये सृजा गया है"।

चन्द लोग यह पूछते हैं कि यदि परमेश्वर ने विश्व को बनाया तो किस द्रव्य से बनाया? क्या यदि अणु या परमाणु या तत्त्व या प्रकृति न होती तो विश्व कैसे बने? केवल मैं इस प्रश्न का कुछ उत्तर नहीं है पर सोच विचार कीजिये क्या परमेश्वर एक कुम्हार के समान है जो बिना मिट्टी के घड़ा नहीं बना सकता है? वे जो बतलाते हैं कि परमाणु सदा से हैं और उन के द्वारा विश्व किसी न किसी प्रकार से बन गया यह नहीं बतला सकते हैं कि क्यों है कि वे सदा से थे। यह कहना कि

कोई वस्तु सदा से है या आप से आप बना कोई वर्णन नहीं है पर केवल धोखा देना है। हम कहते हैं कि विश्व के तत्त्व ईश्वर के बनाये हुए हैं कब या किस प्रकार से यह हम नहीं जानते हैं। पर यह कहना कि वे आप से आप बन गये या सदा से थे कुछ ज्ञान की बात नहीं पर केवल एक आड़ है जिस में छिपके हमारे विरोधियों को यह कहना न पड़े कि हम नहीं जानते हैं। बहुत सी बातें हैं जिन को जानना हमारे लिये अब लों संभव नहीं। विद्यावानों को जैसे कि और लोगों को उचित है कि वे कभी कहने को तैयार होवें कि "हम नहीं जानते हैं"।

ईश्वर पालनहार और प्रबन्धकर्त्ता है।

२. न केवल ईश्वर ने विश्व को बनाया पर अब लों उस को अपने बश में रखता है और अपनी इच्छा के अनुसार सब कुछ करता और कराता है। मैं जानता हूं कि संसार में तरह २ की बातें होती हैं जिन के बारे में हम एक बारगी यह नहीं कह सकेंगे कि यह ईश्वर की इच्छा और आज्ञा के अनुसार हुआ। क्या भूंडोल और आंधी और अकाल और वबा और ऐसी २ बिपत्ति जिन से सहस्रों २ मनुष्य दुःख उठाया करते हैं क्या यह सब ईश्वर के प्रबन्ध के अनुसार होते हैं? ऐसी बातों पर सोच बिचार करके हमें उचित है कि सावधानी से और मानो कांपते २ बात कहें ऐसा न होवे कि हम कोई ऐसी बात कहें जिस के द्वारा हम ईश्वर का अनादर करें।

बैबल में दुःख और पाप का आपस में का सम्बन्ध बतलाया गया है। पाप को परमेश्वर ने न तो किया न कराया पर मालूम होता है कि पाप ही के कारण संसार में दुःख और बिपत्ति हुईं और यह ईश्वर की इच्छा के अनुसार हुआ। यह बड़ी गंभीर बात है कोई उस गहिराव की थाह नहीं ले सकता है। पर बिश्वासी मान लेते हैं कि परमेश्वर दयावन्त होके सब उपाय करता है कि जिस से मनुष्यों की भलाई होवे। और वे समझते हैं कि किसी न किसी प्रकार से परमेश्वर पाप से घिन्न करके और यह जानके कि जब लों पाप नष्ट न होवे मनुष्यों की भलाई नहीं हो सकती पाप का प्रतिफल दुःख ठहराके संसार में बिपत्तों को भेजता है और जब लों कि पाप नष्ट न होवे तब लों दुःख होता रहेगा। निस्सन्देह यह बात सच है कि बहुत से दुःख और बिपत्ति ऐसे हैं कि हम नहीं समझ सकते हैं कि वे पाप से क्या संबन्ध रखते हैं और बार २ ऐसी बिपत्ति उन लोगों पर आ पड़ती हैं जो दूसरे लोगों की अपेक्षा अधिक अधर्म्मी नहीं हैं। पर समझ लेना कि मनुष्य आपस में ऐसा दृढ़ संबन्ध रखते हैं कि देखने में यह बात नित्य आती है कि धर्म्मी अधर्म्मियों के प्रतिफल में संभागी होते हैं और अधर्म्मी धर्म्मियों के अच्छे २ कर्म्मों के फल में शरीक होते हैं।

पाप और दुःख के बारे में बहुत सी बातें हैं जो सर्वथा हमारी समझ से बाहर हैं। पर मसीहीमत का यह विशेष सिद्धान्त है कि परमेश्वर यहां लों इस संसार से संबन्ध रखता है कि कोई बात उस के प्रबन्ध से

बाहर नहीं है और वह दयावन्त होके मनुष्यों की भलाई के लिये सब कुछ करता और कराता है। विश्वासी प्रतीति करते हैं कि विश्व का अधिकारी ईश्वर है और वे इस बात को स्वीकार करते हैं कि "हम जानते हैं कि जो लोग ईश्वर को प्यार करते हैं उन के लिये सब बातें मिलके भलाई ही का कार्य्य करती है"। (रोमियों ८: २८।)

विश्व न अनादि न अनन्त है।

३. यह विश्व न तो अनादि है न अनन्त। बहुत दिन हुए ईश्वर ने उस को बनाया और वह दिन आवेगा जब उस का अन्त होगा। बैबल में इस बात की कुछ चर्चा नहीं है कि बार २ विश्व की उत्पत्ति और प्रलय हुआ करते हैं जैसे कि हिन्दू शास्त्रों में बतलाया जाता है। वे बतलाते हैं कि ऐसी उत्पत्ति और प्रलय सनातन से होते आये हैं और सनातन तक कदाचित होते रहेंगे।

यद्यपि यह विश्व अनादि और अनन्त नहीं है तौभी वह सचमुच है वह माया रचित नहीं है पर ईश्वर ने उस को बनाया। संसार आप पापमय नहीं है पर मनुष्य के पाप के कारण उस का प्रबन्ध बिगड़ गया है। जब परमेश्वर की इच्छा हो तब मनुष्य मरके उस को छोड़ दे पर जब लों मनुष्य उस में रहे न उस को तुच्छ समझना चाहिये न चेष्टा करनी चाहिये कि उस से अलग होके वनवासी और सन्यासी होवे। तौभी बैबल में इस बात के बारे में नित्य यह शिक्षा दिई जाती है कि मनुष्य

इस संसार में लौलीन न होवे। वह स्मरण रखे कि उस का यहां रहना केवल चन्द दिनों के लिये है पर वह सदा लों और कहीं रहेगा और इस कारण यहां होके अपने सदा के घर के लिये तैयारी करे। वह सांसारिक वस्तुओं के वश में न रहे पर उचित रीति से उन को अपनी और दूसरे लोगों की भलाई के लिये अपने काम में लावे।

आश्चर्य्य कर्म्म ।

आश्चर्य्य कर्म्म के वारे में क्या कहना चाहिये वे किस प्रकार से हो सकते हैं। यहां इस बड़ी बात का अधिक वर्णन नहीं हो सकता है पर यह बात स्वीकार करनी बहुत उचित मालूम होती है कि यदि सचमुच ईश्वर इस संसार का सृजनहार और प्रबन्धकारी है और यदि उस की सब रीतियां और प्रकरण उसी के ठहराये हुए हैं तो अवश्य उसी के अनुसार वह सब कुछ अपनी इच्छा के अनुसार चलावे। मृतक को जिलाना आश्चर्य्य कर्म्म है पर उस के लिये जिस ने पहिले सब पशुओं और मनुष्यों को जीवन दिया क्यों अन्होनी या कठिन बात गिनी जाय? और यदि वह अवतार लेके ऐसा करे या अपने सेवकों के द्वारा ऐसा करावे कौन कह सकता है कि ऐसा करना असंभव है।

वे जो कहते कि आश्चर्य्य कर्म्म हो नहीं सकते या यह कि वे कभी नहीं हुए मानो अभिमानी होके यह कहते कि जो कुछ मैं ने नहीं देखा सो किसी ने नहीं देखा और जो मेरी समझ में नहीं बैठती सो हो नहीं सकती।

रीतियां विधियां संसार के लिये ईश्वर ने ठहराई हैं सही पर वे ईश्वर के बन्धन नहीं हैं और उचित कारण से ईश्वर अपूर्व प्रकार से साधारण रीतियां और प्रकरण मिला सकता है या अपूर्व रीतियां काम में ले सकता है। स्मरण रखना चाहिये कि पाप एक प्रकार का आश्चर्य्य कर्म्म है अर्थात् वह ईश्वर के प्रबन्ध के और उस की ठहराई हुई व्यवस्था के विरुद्ध है। और यदि मनुष्य ने परमेश्वर की ठहराई हुई आत्मिक रीतियों के विरुद्ध ऐसा किया तो क्या यह अनुचित समझा जाय कि परमेश्वर अपनी ठहराई हुई संसारिक रीतियों से अतिरिक्त और २ रीतियां काम में लावे या प्रचलित रीतियां अपूर्व प्रकार से काम में ले आवे कि जिस से पाप मिट जाय और धर्म्म फिर विराजमान होवे?

बस समझ लीजिये कि विश्वनाथ परमेश्वर ही है। वही सृजनहार है वही पालनहार है। संसार जब तक कि परमेश्वर की मरजी हो स्थिर रहेगा और जब उस का काम समाप्त हो जावे तब ईश्वर की इच्छा के अनुसार वह लोप हो जायगा और परलोक में जहां न दुःख है न मृत्यु है वे लोग जो इस संसार में जीते जी परमेश्वर के सच्चे विश्वासी हुए अपने ईश्वर के साथ सदा लों जीते रहेंगे।

~~~~~~~~~~
~~~~~~~~~~
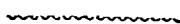
४. पाप ।

इस व्याख्या में पाप के विषय में बिचार किया जायगा। निस्सन्देह यह बहुत भारी बात है। हमारे लिये और सब लोगों के लिये यह बहुत ही अवश्य है कि हम समझें कि पाप क्या है क्योंकि जब लों यह मालूम न होवे कि रोग क्या है उस के लिये औषधि मिलनी बहुत कठिन बरन अनहोनी बात है। मानो सब लोग मान लेते हैं कि संसार भर में पाप बहुत प्रचलित है और उस के द्वारा अगणित दुःख और क्लेश उत्पन्न होते हैं। और न केवल इस संसार में पाप के प्रतिफल होते हैं पर लोगों की समझ में यह बात स्थिर है कि परलोक में भी लोगों को पाप का प्रतिफल भोगना पड़ेगा।

हिन्दू मत और मसीही मत का बड़ा भेद।

मैं समझता हूं कि हिन्दू और मसीही मतों में पाप के बारे में भारी २ अन्तर हैं। दोनों मत स्वीकार करते हैं कि पाप है। और दोनों कहते हैं कि पाप से बचना बहुत ही अवश्य है। पर इन दो बातों को छोड़के वे अधिक बरन मानो सब और बातों में बिरोधी हैं। पाप का स्वभाव और गुण क्या है। वे कौन २ काम हैं जो पाप गिनने के योग्य हैं। कहां लों वह सब लोगों को लगता है। किस २ प्रकार से वह छूट जाय। इन सब बातों में हिन्दू मत का उत्तर और है और मसीही मत का और।

हिन्दू मत ।

पहिले निर्णय करना चाहिये कि हिन्दू मत के अनुसार पाप क्या है । विशेष करके दो सिद्धान्त हैं एक साधारण सिद्धान्त कुछ न कुछ यह है कि अपनी जात की परंपरा की रीतियों के विरुद्ध करना या चलना यही पाप है । मैं यह नहीं कहता हूं कि किसी विशेप धर्म्मशास्त्र में ठीक २ ऐसा वर्णन पाया जायगा । पर साधारण लोगों का खियाल कुछ ऐसा मालूम होता है और शास्त्रों में भी बहुत सी ऐसी शिक्षा पाई जाती हैं जो इस से बहुत मिलती हैं । इस सिद्धान्त के अनुसार पाप अधिक करके करनी से सम्बन्ध रखता है और बहुत कम सम्बन्ध सोच विचार से और बोलचाल से । निस्सन्देह कहा जाता है कि झूठ बोलना गाली देना इत्यादि पाप है पर देखने से मालूम होता है कि इन बातों की कम चिन्ता है उन की अपेक्षा जो जात की रीतियों के विरुद्ध हैं । सौ बार झूठ बोले तो क्या जात से कोई निकाला जाय । पर किसी के साथ खाना खाय जो उस की जात का न हो और कैसा हुल्लड़ है । सचमुच साधारण लोगों के बीच धर्म्म और पाप का भेद सुनी सुनाई बातों पर निर्भर है और कम चिन्ता है कि पाप के ठीक २ गुण क्या हैं । ईश्वर के बारे में कम चिन्ता है जात के बारे में बहुत । लोग न तो अपने दिलों से न ईश्वर से न धर्म्मशास्त्र से पूछते हैं कि क्या करना उचित और क्या करना अनुचित है पर पूछना यह है कि जात के लोग क्या कहेंगे ।

मैं मानता हूं (आनन्दपूर्वक) कि यह पूरा वर्णन नहीं है। इन बातों को छोड़के और २ खियाल भी हैं। शास्त्रों के द्वारा और नाना प्रकार की प्रचलित कहावतों के द्वारा लोगों के बीच यह बात मानी जाती है कि हम पापी हैं। कदाचित वे अपने दिलों से यह नहीं पूछते कि हम ने क्या २ पाप किये हैं कदाचित वे प्रायः इस बात की चिन्ता नहीं करते हैं वे कहते हैं कि सब लोग पापी हैं हम भी पापी हैं। पर उन के दिल भी कुछ साक्षी देते कि तुम पापी हो और वे स्वीकार करते हैं कि हम से बुरे २ खियाल और बचन और कर्म्म हुए होंगे। पर तौभी मैं समझता हूं कि जैसे कि चाहिये लोगों के मनों में इस बात का बिचार नहीं हैं कि मेरा स्वभाव ही बिगड़ रहा है पाप के कर्म्म इस कारण मेरी चाल में दिखलाई देते हैं कि पाप मेरे दिल में लगा रहता है। अधिक करके लोगों को दुःख का कारण यह नहीं है कि मेरा पाप मुझ को ईश्वर से अलगाता है मुझ को ईश्वर के साथ मेल नहीं है पर उन को डर है कि पाप का दण्ड मुझे मिलेगा। आगे हम देख लेंगे कि मुक्ति प्राप्त करने के लिये वे कैसे २ उपाय करते हैं उन पर सोच बिचार करते हुए मालूम होता है कि वे सचमुच नहीं जानते हैं कि पाप वास्तव में क्या विषय है। यह कहना कि "हम पापी हैं" प्रायः करके एक सुनी सुनाई बात है। लोग कहते हैं और कुछ न कुछ मानते हैं कि यह बात अवश्य ठीक होगी पर यह एक ऐसी बात नहीं है कि जिस पर वे सोच बिचार करके बोझ के समान समझते हैं और जिस के कारण वे रात

वा दिन घबराते जाते हैं और जिस से वे घिन्न खाके उस से बचने के लिये रो रोके कलपते हैं और स्वभाव को शुद्ध करने के लिये परमेश्वर से प्रार्थना किया करते हैं। लोगों की समझ में पाप कुछ ऐसी करनी है कि जिस को वे जुर्माना देने से या किसी प्रकार के दुःख भोगने से मिटा सकते हैं। और उन को यह बात जैसे कि चाहिये समझी नहीं जाती है कि विशेष करके पाप स्वभाव का बिगड़ना है मुक्ति तो मन को पाप से शुद्ध करना और सुधारना है।

वेदान्ती मत।

वेदान्ती पाप के बारे में दूसरा बर्णन करते हैं। उन की शिक्षा के अनुसार पाप अज्ञान है। पर वेदान्तियों के सिद्धान्तों का बर्णन कौन कर सकता है। जहां पर-ब्रह्म को छोड़के और कुछ है ही नहीं वहां पाप कहां और मुक्ति कहां। वे दोनों के दोनों केवल ख़ियाली बातें हैं बरन सचमुच इतने तक नहीं क्योंकि वास्तव में वह जो ख़ियाल करता है कि मैं पापी हूं वह भी कुछ नहीं है सो उस का ख़ियाल क्या हो सकता है। मैं समझता हूं कि वेदान्ती पाप के बारे में बहुत कम चिन्ता करते हैं। ज्ञान २ कहते हुए वे मानो उस को सब कुछ जानते हैं। उन का यह पूछना नहीं है कि हमारा स्वभाव या मिज़ाज कैसे सुधर जाय या हमारी करनी किस रीति से ठीक २ बने। बरन उन की समझ में संसार और जीवन एक प्रकार का भेद या रहस्य है जिस का खुल जाना और समझ लेना मुक्ति है। या एक पहेली

है उस का उत्तर पाना यही मुक्ति है। जिस ने भेद जान लिया है उस को मुक्ति हो चुकी है और जानने का सार यही है कि न पाप है न पुण्य न संसार है न मनुष्य ब्रह्म को छोड़के और कुछ नहीं है मैं तो मैं नहीं हूं मैं ब्रह्म हूं और यह तो मेरी भूल थी कि मैं हूं और मैं पापी हूं। जहां ऐसे २ सिद्धान्त माने जाते हैं वहां पाप के बारे में कोई ठीक शिक्षा नहीं हो सकती है।

वेदान्ती मानते हैं कि व्यवहारिक रीति से पाप और पुण्य तो हैं और पूजा पाठ धर्म्म कर्म्म करना चाहिये पर ऐसी २ बातें केवल उन लोगों के लिये हैं जो शिक्षित नहीं हैं और जो वेदान्ती सूक्ष्म और गहिरी बातों से जानकार नहीं हैं। वेदान्ती वास्तव में पाप और पुण्य को नहीं मानते हैं पर उन की समझ में वे दोनों के दोनों झूठे हैं।

मसीही मत।

अब देखना चाहिये कि मसीही मत में पाप के बारे में क्या २ शिक्षा है।

यह बात बहुत स्पष्ट है कि बैबल में आरंभ से लेके अन्त लों पाप की चर्चा बहुत है। बैबल के अनुसार पाप कोई खियाली बात नहीं है पर सचमुच एक बहुत भारी और बुरी बात है। जो पृथिवी भर फैला हुआ है और समस्त लोगों को बिगाड़ा है वह दुःख और क्लेश का कारण है और संसार को उलटा पुलटा कर दिया है वह मानो ईश्वर के सिंहासन को डगमगाता है।

बैबल में यहां लों पाप की चर्चा और चिन्ता है कि उस की सब शिक्षा का विशेष अभिप्राय यह है कि पाप किस प्रकार से दूर किया जाए ।

पाप क्या है ।

बैबल की शिक्षा के अनुसार पाप क्या है । दो एक बातों में इस बात का बतलाना सहज नहीं है । जब यह कहा जाता कि चोरी झूठ छल कपट इत्यादि पाप हैं यह बहुत ठीक है पर इसी प्रकार से पाप की विशेषता नहीं मालूम होती है । ये सब पापकर्म्म शरीर के अंगों के द्वारा किये जाते हैं पर पाप हमारे शारीरिक अंगों में नहीं रहता है बरन मन में या दिल में । लालच का पाप मन में उत्पन्न होता है और लालची होके मनुष्य चोरी करने लगता है । फिर झूठ मानो आप से आप उत्पन्न नहीं होता है वह पाप है सही परन्तु जब लों कि मानसिक पाप पहिले पहिल न होवे जीभ से झूठ बात नहीं बोली जाएगी । झूठ किसी न किसी कारण कहा जाता है और वही मूल कारण विशेष करके पाप है । मनुष्य या तो लालची होके झूठ बोलता या दूसरे पाप को छिपाने के लिये या घमण्डी होके वह और कुछ होके अपने तईं और कुछ बतलाता है । पर यदि हम मान लें कि मानसिक गुण जो है यही तो पाप है जैसे कि लालच ईर्षा घमण्ड इत्यादि तौभी निर्णय पूरा नहीं हुआ है । पाप कर्म्म तो फल है ये मानसिक वृत्तियां डालियां समझ लीजिये पर मूल क्या है जिस से वे सब उत्पन्न होते हैं । बात तो यह है कि मनुष्य का स्वभाव बिगड़ गया है और इस के बिगड़ जाने

के कारण मन में यह सब अनुचित वृत्तियां उत्पन्न होती हैं।

यह स्वभाव का बिगाड़ क्या है। मैं समझता हूं कि यह अच्छा हो कि हम पहिले देख लें कि वह मनुष्य किस प्रकार का होवे जिस में पाप नहीं है तब और अच्छी तरह से मालूम होगा कि विगाड़ किस प्रकार का है। मनुष्य ईश्वर का बनाया हुआ है और ईश्वर ऐसा श्रेष्ठ और पवित्र और दयायुक्त है कि जब लों मनुष्य का स्वभाव विगड़ न गया हो तब लों वह पूरी रीति से ईश्वर से प्रेम रखे उस पर भरोसा रखे और उस के आधीन रहे। ऐसे मनुष्य में अहंकार नहीं होगा और वह यह नहीं चाहेगा कि ईश्वर की आधीनता से छूटके स्वतंत्र होवे। वह समझेगा कि जिस ने मुझ को बनाया है और जो मेरा पालन पोषण करता है जो सर्व्वज्ञानी और उत्तमोत्तम है वह मेरी भलाई चाहता है और मेरी भलाई के लिये सब कुछ करता है मैं उस से प्रेम क्यों न रखूं उस पर भरोसा क्यों न होवे मैं उस का आज्ञाकारी क्यों नहीं रहूं। ऐसा स्वभाव ठीक है उचित है अब लों बिगाड़ नहीं हुआ है। जब ऐसे स्वभाव में बिगाड़ होवे तब पाप मन में उत्पन्न होता है। पाप यह है कि हम ईश्वर से प्रेम न रखें या उस की अपेक्षा और किसी से अधिक प्रेम रखें या विशेष करके अपने आप से अधिक प्रेम रखें। और फिर पाप यह है कि हम ईश्वर पर पूरा भरोसा न रखें ऐसा करते हुए हम मानो यह प्रगट करते हैं कि हमारी समझ में ईश्वर की अपेक्षा कोई दूसरा अधिक ज्ञानी और बुद्धिमान है। फिर पाप यह है कि हम ईश्वर

के आधीन न रहें उस के आज्ञाकारी न बने रहें । जब हम ऐसा करें हम माने और किसी को या अपने तईं ईश्वर ठहराते हैं और स्वतंत्र होके अपनी इच्छा के अनुसार चलने चाहते हैं ।

निस्सन्देह नाना प्रकार की और बातें हैं जो पाप के बर्णन करने में कही जा सकती हैं । पाप मनुष्य की स्वभाविक प्रकृति के बिरुद्ध चलना है । कभी लोग बतलाते हैं कि मनुष्य की प्रकृति पापमय है पर ऐसा बतलाना यथार्थ नहीं है । बैबल में लिखा है कि जब पहिले परमेश्वर ने मनुष्य को बनाया उस में पाप नहीं था । यीशु मसीह सच्चा मनुष्य था तौभी उस में पाप का लवलेस नहीं था । तो क्या हम यह समझें कि इस कारण यीशु की मनुष्यता वास्तव में मनुष्यता नहीं थी । समझ लेना चाहिये कि मनुष्यता का स्वभाविक गुण पाप नहीं है पर एक अवगुण जो उस की प्रकृति के बिरुद्ध है । जहां लों मनुष्य पाप करे उस के मनुष्यपन का बिगाड़ हुआ है और जहां लों पाप से बचके यह पापरहित बने वहां लों वह सिद्ध और वास्तविक मनुष्य है ।

एक और बर्णन यह है कि पाप ममता है । पर जैसा कि हिन्दू मत में इस बात का बर्णन है वैसा ठीक नहीं है । हिन्दुओं का सिद्धान्त यह है कि मनुष्य और ईश्वर एक हैं और कि यह समझ लेना कि ईश्वर भिन्न है और मैं भिन्न हूं यही ममता है । मसीही मत में ऐसा सिद्धान्त नहीं है । मनुष्य सचमुच ईश्वर से भिन्न है और ईश्वर मनुष्य से । पाप हो या न हो तौभी मनुष्य ईश्वर से अलग है और अलग ही रहेगा । पर एक और प्रकार की

अलगाई है जो पाप से और ममता से उत्पन्न होती है अर्थात् जब मनुष्य ईश्वर के आधीन रहना प्रसन्न न करके स्वतंत्र होना चाहता है। मसीही मत में यही ममता है कि जिस के कारण मनुष्य को ईश्वर से दूर रहना पड़ता है। यह कहना कि ईश्वर भिन्न है मैं भिन्न हूं ममता नहीं है पर ममता यह है कि मनुष्य अपने तईं स्वतंत्र समझके और अहंकार से भरके ईश्वर के वश में रहना न चाहे पर चेष्टा करे कि अपनी इच्छा के अनुसार चले।

जब प्रभु यीशु से यह पूछा गया था कि कौन बड़ी आज्ञा है उस ने न केवल बतलाया कि बड़ी आज्ञा यह है कि ईश्वर से प्रेम रखना पर कहने लगा कि दूसरी आज्ञा उस के समान है अर्थात् मनुष्य से भी प्रेम रखना। जो ईश्वर से प्रेम रखे और उस का आज्ञाकारी रहे अवश्य मनुष्यों से भी प्रेम रखे और यदि वह ऐसा न करे वह पापी है। यीशु मसीह ने बतलाया कि इन दो आज्ञाओं पर अर्थात् ईश्वर से और मनुष्यों से प्रेम रखना समस्त व्यवस्था निर्भर है। यदि इस बात पर हम सोच-विचार करें तो इस की सच्चाई स्पष्ट रीति से प्रगट होगी। वह जो दूसरे से प्रेम रखे क्या वह उसी से चोरी कर सके? क्या वह उसी से किसी प्रकार की ठगाई करे? क्या वह कपटी होके खोटा माल बेचे या अधिक दाम ले सके? जो सच्चे प्रकार से ईश्वर से और सब मनुष्यों से प्रेम न रखे उस के स्वभाव में बिगाड़ हुआ है वह पापी हो चुका है और अवकाश होते ही वह पाप कर्म्म भी करे। जहां पूरा प्रेम है वहां पाप नहीं।

पाप कहां से और क्यों।

एक बाद विवाद है जो बहुत दिनों से प्रचलित है। पाप ने किस प्रकार से संसार में प्रवेश किया? किस प्रकार से पाप उत्पन्न हुआ? ईश्वर ने क्यों पाप को होने दिया? ऐसे प्रश्नों का उत्तर कौन दे सकता है? एक बात हम लोगों की समझ में आ सकती है। मनुष्य को एक प्रकार की स्वतंत्रता है अर्थात् वह अपनी खुशी से या तो ईश्वर के अधीन रहे या चेष्टा करे कि अपनी इच्छा के अनुसार चले। जब लों उस को इतनी स्वतंत्रता न होवे हम उस को किस प्रकार से मनुष्य ही समझें। वह जो केवल इस कारण नेक चाल से चलता कि उस को अधिकार नहीं कि वह और कुछ कर सकता हम उस को धर्म्मी नहीं समझ सकते हैं। जहां तक हमारी समझ पहुंचती यह बात दिखलाई देती है कि परमेश्वर ने इस कारण मनुष्यों को बनाया कि वे उस के साथी होवें। पर जब लो कि वे किसी प्रकार का अधिकार न रखते हुए ईश्वर के आधीन रहें वे क्यों अच्छे मनुष्य गिने जायें और ईश्वर के साथियों के होने के योग्य होवें? बैबल में यह बात दिखलाई देती है कि शैतान ने इस ससार में पाप उत्पन्न कराया अर्थात् उसी के द्वारा पहिली स्त्री के दिल में ईश्वर के बारे में यह संदेह हुआ कि ईश्वर सचमुच हमारी भलाई चाहता है या ईर्षा से भरके हम लोगों को अपने आधीन रखना चाहता है। लोग यह पूछते हैं कि ईश्वर ने शैतान को क्यों

ऐसा करने दिया? और यह कहना पड़ता है कि हम नहीं जानते हैं।

आजकल कभी लोग कहते हैं कि शैतान केवल नाम-मात्र है वह बुराई जो हमारे दिलों में है वही शैतान है। पर ऐसा कहना अनुचित है और बैबल के बिरुद्ध है। यह बात असंभव नहीं है कि इस संसार को छोड़के और २ संसार हैं और उन में दूसरे २ जीवात्मा रहते हैं और उन मे से चन्द ईश्वर के आधीन और चन्द उस के आधीन नहीं रहते हैं। और इस बात को स्मरण करना चाहिये कि मनुष्य के वंश में था कि शैतान की बात माने या न माने ईश्वर पर भरोसा रखे या न रखे। बैबल में बराबर पाप के विषय में यही बर्णन है कि मनुष्य पाप करते हुए इस कारण नहीं करता कि उस का स्वभाव पहिले ऐसा बनाया गया था कि उस को अवश्य ऐसा करना पड़े बरन वह पाप करते हुए वही करता है जो उस के स्वभाव के बिरुद्ध है और वही करता है कि जिस के कारण वह अपराधी ठहराने के योग्य होता है। पापी होने का अर्थ यही है कि जो कुछ करने के योग्य नहीं था और जिस को करने की कुछ आवश्यकता न थी वही किसी ने किया और इस कारण पापी ठहराया गया। जहां आवश्यकता है वहां स्वतंत्रता नहीं और जहां किसी प्रकार की स्वतंत्रता नहीं वहां पाप नहीं है।

परंपरा का पाप।

अब एक और भारी बात पेश आई जिस के बारे में

अवश्य सोचविचार करना चाहिये। क्या सचमुच पहिले मनुष्य अर्थात् आदम के पाप के द्वारा सब लोग पापी हो गये हैं? मैं समझता हूं कि कभी लोग दूसरे प्रकार से इस बात का वर्णन करते हैं। वे बतलाते है कि कदाचित तीन महीनें के बच्चों ने पाप नहीं किया हो तौभी आदम के पाप के कारण सब लोग ईश्वर के साम्हने पापी गिने जाते हैं। दोनें बातों में बड़ा अन्तर है पापी होना और बात है और पापी गिना जाना और बात। बहुत से लोग पापी हैं तौभी मनुष्यों के साम्हने पापी नहीं गिने जाते हैं। दूसरे लोग पापी गिने जाते हैं जो सचमुच उसी प्रकार के पापी नहीं हैं। हम को प्रतीति है कि ईश्वर किसी को पापी नहीं गिन लेगा जिस ने वास्तव में पाप नहीं किया है। ईश्वर के साम्हने लोग इस कारण पापी नहीं समझे जाते हैं कि वे आदम के सन्तान हैं पर इस कारण कि वे आदम के अनुसार पाप करके पापी हो जाते हैं।

बात तो यों है मनुष्य जाति में सब मनुष्यों के बीच एक आश्चर्य्य रीति का सम्बन्ध है। सब मनुष्य एक माता पिता से उत्पन्न हुए हैं और अपनी माता पिता के द्वारा एक विशेष प्रकार की प्रकृति प्राप्त कर चुके हैं। वह प्रकृति या स्वभाव पाप की ओर मानो झुक गया है। इस कारण लड़के उत्पन्न होते ही ऐसी प्रकृति या स्वभाव रखते हैं जो शुद्ध नहीं पर पाप की ओर मानो खींचा जाता है। यद्यपि वे अपराधी अब तक नहीं हैं तौभी वे ऐसा बिगड़ा हुआ स्वभाव रखते है कि न केवल संभव है कि परीक्षा में पड़के वे धर्म्मी न बने रहें पर

पाप करने को तैयार होवें । पर नित्य देखने में यही बात निकलती है । कौन है जिस ने पाप नहीं किया है । कौन लड़का है जो कुछ समझदार हो गया है जिस ने कभी ऐसा काम नहीं किया हो जिस के बारे में उस को मालूम है कि यह अनुचित है । मैं जानता हूं कि इस बात को स्वीकार करना कि सब मनुष्य अपनी माता पिता के पाप के कारण पापमय स्वभाव रखते हैं कुछ कठिन मालूम होती है । पर इस को समझ लीजिये कि इस को स्वीकार न करना अधिक कठिन है क्योंकि हम देखते हैं कि यह बात ऐसी ही होती जाती है ।

परीक्षा और पाप ।

यह बात बहुत ही अवश्य है कि हम अच्छे प्रकार से देख लें और समझ लें कि परीक्षा में आना और बात है और पाप करना और बात । जिस यूनानी शब्द का उलथा "परीक्षा" है उसी के दो अर्थ हैं एक तो "परख लेना" दूसरा "बहकाना" है । परमेश्वर मनुष्य को परखता है पर कभी उस को नहीं बहकाता है । शैतान उस को बहकाता है वह यह नहीं चाहता कि मैं देख लूं कि मनुष्य सचमुच धर्म्मी है या नहीं पर यह चाहता है कि उस को पाप में फंसावे । बहुत से लोग परखे जाते हैं बरन उन के बारे में यह चेष्टा किई जाती है कि वे पाप में फंसाये जायें तौभी परमेश्वर के अनुग्रह से वे फांस मे नहीं फंसते वे पापी नहीं होते । हमारे प्रभु यीशु मसीह की यह दशा नित्य होती थी । उस की परीक्षा किई जाती थी पर वह कभी पाप में नहीं फंसा

उस ने कभी पापमाच नहीं किया । मैं समझता हूं कि मरने से पहिले जब प्रभु यीशु बाटिका में प्रार्थना करता था उस की परीक्षा किई जाती थी । शारीरिक रीति से बरन मानसिक रीति से भी वह चाहता था कि इसी प्रकार के मार डाले जाने से मैं बच जाऊं परन्तु अपनी इच्छा पर जयमान होके अपने पिता से कहा कि मेरी इच्छा नहीं पर आप की इच्छा होवे और अपने पिता की इच्छा को स्वीकार करके वह परीक्षा में पड़ते हुए पापी नहीं हुआ ।

पाप के प्रतिफल ।

एक और बात है जिस के बारे में कुछ कहना बहुत ही अवश्य है । पाप का प्रतिफल क्या है । बहुत संक्षेप में इस प्रश्न का उत्तर देना चाहिये ।

१. परमेश्वर के साम्हने वह जो पाप करता है पापी ठहराया जाता है और वह मेल जो मनुष्य परमेश्वर के साथ रखता था सो टूट जाता उस के स्वभाव में बिगाड़ हुआ । सब प्रतिफलों में से बड़ा प्रतिफल यह है कि मनुष्य जैसा कि होना चाहिये वैसा वह अब नहीं है और जैसा कि न होना चाहिये अब वह ऐसा हो गया है । प्रायः करके न केवल ईश्वर के साम्हने वह अस्वीकृत और दोषी ठहराया गया है बरन मनुष्यों के साम्हने ऐसा हुआ है और अपने दिल में लज्जित होके मान लेता है कि मै पापी हूं जो करना उचित था सो मै ने नहीं किया और जो अनुचित था वही मैं ने किया । पापी और अपराधी होना यही भारी प्रतिफल है ।

चाहे मनुष्य इस बात की चिन्ता न करे चाहे दण्ड उस को अभी तक न मिले तौभी ईश्वर से वह दूर हो गया और उस का धर्म्म बिगड़ गया है।

२. पाप के करने से ऐसा बिगाड़ होता है कि धर्म्म पर तत्पर रहना अधिक कठिन हो जाता है और पाप करने पर स्वभाव अधिक झुक जाता है। यह भी पाप का एक बहुत भारी प्रतिफल है।

३. पाप का एक और प्रतिफल प्रायः करके यह है कि उस के कारण और उस के द्वारा दण्ड या दुःख होता है। अधिक या कम अब या तब पाप के बदले में दुःख अवश्य होगा। स्मरण रखना चाहिये कि प्रायः करके वे जो अपने पापों से पश्चात्ताप करते वे इस संसार में सब प्रकार के दुःख रूपी प्रतिफल से नहीं बच जाते हैं। पर धन्य वे हैं जो आप पश्चात्ताप का दुःख उठाके परलोक के दुःख से बच जाते हैं।

४. वे जो पश्चात्ताप नहीं करते हैं अन्तकाल में अवश्य ऐसा प्रतिफल भोगेंगे जो हमारे बर्णन से बाहर है।

५. एक और फल है जो ध्यान रखने के योग्य है। मनुष्य पाप करने के द्वारा दूसरे लोगों को दुःख देता और दिलाता है और बहुतों को बिगाड़ता है और यदि वह मनुष्य सर्व्वथा शैतान के समान नहीं बन गया हो इस बात पर सोच बिचार करके कि मैं ने औरों को पापी बनाया है बहुत दुःख उठावेगा।

यहां तक मैं इस व्याख्या को समाप्त कर देता हूं इस एक बात को कहके कि हमारे लिये बहुत अवश्य है कि हम पाप की प्रकृति को समझके उस से घिन्न करें

और चेष्टा भी करें कि हम आप सर्व्वथा उस से बच जायें। यदि हम उपदेशक होते तो सावधानी और प्रेम पूर्वक लोगों को दिखलाना चाहिये कि वे पापी और अपराधी हैं और इसी प्रकार से उन के मनों में निश्चय करा दें कि उन के लिये सब से अवश्य बात यह है कि उन को मुक्तिदाता मिले।
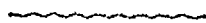
५. मुक्ति।

इस व्याख्या में दो बड़ी बातें हैं जिन के बारे में निर्णय करना पड़ेगा। (१) मुक्ति क्या है। (२) वह किस रीति से प्राप्त होवे।

मुक्ति क्या है।

पहिले सोच बिचार करना चाहिये कि साधारण लोगों के बीच में मुक्ति के बारे में क्या सिद्धान्त हैं। बहुत से लोग कदाचित् कहेंगे कि आवागमन से छूटना यही मुक्ति है। पर कदाचित् अधिक लोग इस बात का बहुत बिचार नहीं करते होंगे पर यह समझते हैं कि पाप के दण्ड से अर्थात् नरक से बच जाना यही मुक्ति है। कदाचित् बहुत कम लोगों का यही बिचार है कि पाप रहित होना शुद्ध होना यही मुक्ति है।

वेदान्ती लोग समझते हैं कि यह समझ लेना कि ब्रह्म को छोड़के और कुछ नहीं है मैं ब्रह्म हूं यही मुक्ति है। उन की समझ में साधारण लोगों की समझ कि विश्व जो है तो सचमुच है और ईश्वर और मनुष्य भिन्न हैं और मैं जो हूं सो एक ऐसा व्यक्ति हूं जो दूसरे मनुष्यों से और विश्व से और ब्रह्म से अलग हूं यह सब भ्रम और झूठ है और ऐसे अज्ञान से सचेत हो जाना यही मुक्ति है। ऐसी शिक्षा के अनुसार पाप तो कोई विशेष वस्तु नहीं है वह केवल बचनमात्र है अज्ञान यही तो पाप है। जब लों कि मनुष्य समझे कि पाप और पवित्रता सचमुच भिन्न २ वस्तु हैं वह प्रपंच में फंसा

है पर जब वह यह समझे कि मैं ने न पाप किया न करता न कर सकता क्योंकि मैं तो वास्तव में कुछ नहीं हूं जो है सो ब्रह्म है तब उस को मुक्ति मिल गई है वह अज्ञान से छुटकारा पा चुका है।

देखना चाहिये कि इन सब बातों के नीचे क्या बिचार छिपा हुआ है जिस के कारण ऐसा प्रपंच उन लोगों की समझ में फैल गया है। मैं जानता हूं कि वेदान्तियों के मन में जैसे कि और लोगों के मन में यह ख़ियाल कुछ न कुछ है कि ईश्वर से अलग होना अर्थात् ईश्वर के बिरुद्ध हो जाना और उस की इच्छा के अनुसार न चलना और उस की इच्छा को तन ओ मन से स्वीकार न करना यही पाप है। पर धीरे २ यह सोच कुछ बदल गया है और वे अपने मनों में यह समझने लगे कि ईश्वर से मेल रखने और ईश्वर से मिलने का यही अर्थ है कि ईश्वर में लौलीन होना। और इस के अनन्तर वे यह सोचने लगे कि ईश्वर में लौलीन होने का यही अर्थ है कि वास्तव में मनुष्य और ईश्वर में कुछ भिन्नता नहीं रह गई है। मनुष्य यहां लों ईश्वर में लौलीन है कि वह ईश्वर ही है और इस के अनन्तर वे कहने लगे कि यह बात न केवल होवेगी या होनी चाहिये पर सदा से हुई है और केवल लोगों की भूल है कि मनुष्य ईश्वर से अलग है।

हमारे लिये यह बात सहज नहीं है कि हम अच्छी तरह से समझें कि किस प्रकार से उन के मनों में ऐसे सोचबिचार उत्पन्न हुए हैं पर मैं जानता हूं कि एक बड़ी बात यह है कि किसी न किसी प्रकार से यह

ख़ियाल उन के मनों में उठा है कि यदि ईश्वर को छोड़ और कोई वस्तु या व्यक्ति मान लिई जाय तो ईश्वर का बिकार हुआ है नहीं तो वह क्यों किसी बस्तु को बनावे जो उस से पहिले न रही हो? वे समझते कि यदि हम ऐसी बात मानें यह बात प्रगट होगी कि पहिले ईश्वर में किसी प्रकार की न्यूनता थी कि जिस के कारण कुछ बनाने की आवश्यकता पड़ी । उन को यह डर है कि यदि यह बात मानी जाय कि ईश्वर कुछ करे हां यदि कुछ सोचे यह ईश्वर का विकार गिना जायगा और यह बात बिगड़ जायगी जिस को मान्ना बहुत ही अवश्य है अर्थात् कि ब्रह्म जैसा कि था वैसा ही है और वैसा ही नित रहा करेगा । वह एक है वह एकसां रहता है और वह यहां तक एक है कि उस को छोड़के और कुछ है ही नहीं वे मानो ईश्वर की उत्तमता यह समझते हैं कि केवल उस के बारे में यह कहा जायगा कि वह है और जो कुछ ब्रह्म नहीं है वह सचमुच है ही नहीं ।

माया ।

यदि उन की बात मानी जाय अवश्य यह पूछना पड़ेगा कि यदि विश्व नहीं है और मनष्य नहीं है तोभी मनुष्यों की समझ में दोनों हैं यह प्रपंच कहां से उत्पन्न हुआ और वे बतलाते हैं कि यह माया या अज्ञान से हुआ है । इसी प्रकार से माया या अज्ञान एक अलग बस्तु या ईश्वर हो गया है । यह माया वास्तव में ब्रह्म है या नहीं है? यदि वह ब्रह्म नहीं है तो ईश्वर को

छोड़के और कुछ तो है यदि ब्रह्म है तो ब्रह्म में बिकार हुआ है । वेदान्ती कहते हैं कि माया सचमुच नहीं है तौभी किसी न किसी प्रकार से हम कह सकते हैं कि वह है अर्थात् वह व्यवहारिक सत्ता रखती है पर उस की पारमार्थिक सत्ता नहीं है । पर ऐसे कहने का क्या अर्थ है? किसी बस्तु के विषय में अवश्य कहना चाहिये कि या तो वह है या नहीं है । उस के बारे में हम दोनों नहीं कह सकते हैं । यदि वेदान्तियों का अर्थ यही है कि वह जो व्यवहारिक सत्ता रखता है सो वही है जो केवल कुछ दिन का है पर वह जो पारमार्थिक सत्ता रखता है वही है जो सब दिन का है और सब दिन लों रहेगा । हम कहते हैं कि भला शब्दों में कुछ गड़बड़ हुआ है (क्योंकि यदि कोई बस्तु एक दिन की या सब दिन की है तौभी जब लों कि वह है वह है और जब नहीं है तो नहीं है) पर इस बात को जाने दीजिये अर्थ तो स्पष्ट हुआ और अब हम वेदान्तियों से यह पूछते हैं कि स्पष्ट कहिये माया चन्द दिन की है या सब दिन की यदि सब दिन की तो क्यों उस की सत्ता पारमार्थिक सत्ता नहीं है यदि सब दिन की नहीं तो कहां से उत्पन्न हुई? यदि ब्रह्म की बनाई तो ब्रह्म का बिकार क्यों नहीं हुआ हो? और यदि उस का कोई दूसरा सृजनहार है तो हम कैसे कहें कि ब्रह्म को छोड़ और कुछ नहीं है? माया या अज्ञान जो है सो संसार का सृजनहार नहीं है न उस का दिखलानेवाला है पर केवल लोगों के मनों में उत्पन्न होता है जब कि वे सीधी बातों को छोड़के अपने तई जाल और प्रपंच में फंसाते हैं ।

किस की मुक्ति होनी चाहिये।

यदि हम वेदान्तियों की बातें मान लें अन्त में क्या बात निकलती है? मनुष्यों की मुक्ति नहीं हो सकती है क्योंकि वास्तव में मनुष्य तो है ही नहीं। खियाली मनुष्य खियाली कूए में गिर पड़ा है उस का छुटकारा भी केवल खियाली बात है। यदि सचमुच मुक्ति कोई बात हो और किसी की हो तो परब्रह्म की हो क्योंकि उस को छोड़के और कोई नहीं है जिस की मुक्ति हो सकती है।

वेदान्तियों के दो पन्थ।

स्मरण रखना चाहिये कि वेदान्ती दो विशेष प्रकार के हैं। वे जो रामानुज के अनुगामी हैं और वे जो शंकराचार्य्य की शिक्षा मानते हैं और मुक्ति के विषय में दोनों के भिन्न २ मत हैं।

जो वर्णन अभी किया गया है विशेष करके शंकराचार्य्य के मत से सम्बन्ध रखता है। वे वेदान्ती जो रामानुजी हैं वे मान सकते हैं कि मुक्ति कोई वस्तु है क्योंकि यद्यपि वे भी कहते हैं कि ब्रह्म एक है और यह सब कुछ है तौभी इस के साथ वे मान लेते हैं कि मनुष्य आपस में भिन्न हैं और ईश्वर से भी किसी न किसी प्रकार से भिन्न हैं और भिन्न रहेंगे। उन की समझ में मुक्ति यह नहीं है कि मनुष्य इसी रीति से ब्रह्म में लीलीन हो जावे कि किसी प्रकार की भिन्नता न रह जाय पर यह कि वे ईश्वर से प्रेम रखें और सदा सर्बदा ईश्वर के साथ संगति रखें।

रामानुजियों के मत का पूरा बर्णन यहां नहीं दिया जा सकता है। मै समझता हूं कि वे चेष्टा करते हैं कि शंकराचार्य्य का मत और साधारण हिन्दुओं का मत मिला दें पर ये दोनों मिल नहीं सकते हैं। और इस कारण वे शंकराचार्य्यियों के साथ यह कहना चाहते हैं कि ईश्वर एक है और उस को छोड़के और कुछ नहीं है और साधारण हिन्दुओं के साथ सब देवताओं को और पूजापाठ इत्यादि को मानने चाहते हैं।

मसीही मत।

अब देखना चाहिये कि मसीही मत में मुक्ति का क्या अर्थ है। यह नहीं कहा जा सकता है कि जितने मसीही हैं वे सब के सब एक ही प्रकार से मुक्ति का बर्णन करते हैं तौभी वे अधिक करके इस बात में सम्मत हैं।

मुक्ति का विशेष अर्थ यह है कि पाप से नियारा होना। और इस में दो बातें हैं पहिली यह कि परमेश्वर किसी के पाप को क्षमा करे और दूसरी यह कि वह उस मनुष्य को ऐसी बुद्धि और बल देवे कि वह पाप करता न रहे पर उस का स्वभाव दूसरे रंग का होवे कि जिस के कारण उस के सोच बिचार और चालचलन नये ढंग के हो जावें। मुक्ति तो पापरूपी बन्धन से छुटकारा पाना है। जिस को मुक्ति प्राप्त हुई हो वह अब पाप के बश में नहीं है पर ईश्वर की इच्छा के अनुसार और अपने सच्चे स्वभाव के अनुसार चलता वह अब ईश्वर के बिरुद्ध नहीं है पर उस से मेल रखता है।

मुक्ति में और बातें भी हैं। एक यह है कि अभी या कभी अपने पाप के प्रतिफल से छूट जाना। मैं "अभी या कभी" इस कारण कहता हूं कि यह बात संभव है कि कोई पापी अपने पाप से सच्चे मन से पश्चात्ताप करे और परमेश्वर उस के पापों को क्षमा करे तौभी वह मनुष्य अपने किये हुए पापों का फल कुछ दिन लों भोगता रहे। दो एक उदाहरणों पर ध्यान कीजिये। कोई धनी नाना प्रकार के लुचपन में अपना धन उड़ावे तदनन्तर कदाचित् वह पश्चात्ताप करके सच्चा बिश्वासी हो जावे और ईश्वर उस के पापों को क्षमा करे पर तौभी वह दरिद्रता में फंसा है वह एक बारगी फिर धनी नहीं हो जाता है। या अपने पाप के द्वारा कोई मनुष्य रोगी हो गया हो तो क्या बिश्वासी होके उस का रोग जाता रहेगा? कदाचित् वह जन्म भर अपने पहिले पाप के कारण दुर्बल रहेगा। अब प्रायः करके वह जो बहुत दिन लों पाप में लगा रहे वह नाना प्रकार की हानियां उठावे जो जन्म भर कुछ न कुछ सहना पड़ेगा पर अन्त में पूरी मुक्ति होवेगी। अधिक करके वह मनुष्य जो ईश्वर का सच्चा भगत हुआ हो नाना प्रकार के प्रतिफलों के भोगने से बचता है (जो उस पर आनेवाले थे यदि वह अपने पापों से पश्चात्ताप न करता) और अन्त में वह सब दुःखों से छुटकारा पावेगा और स्वर्ग में पहुंचाया जायगा जहां न दुःख न मृत्यु न पाप है।

इस संसार में चाहे दुःख से बचे या न बचे तौभी मुक्ति प्राप्त करते हुए पाप से बचना पड़ता है स्वभाव नया

हो जाती यहां लों कि मसीही धर्म्मपुस्तक में उस मनुष्य के बारे में लिखा है जो सच्चा विश्वासी हुआ है कि उस का दूसरा जन्म हुआ ।

यह बात अवश्य पूछी जायगी । क्या जिस का यह नया जन्म हुआ जो सचमुच मसीही हो गया है वह सर्बथा पापरहित है या नहीं? किये हुए पापों को परमेश्वर ने क्षमा किया है पर देखने में यह बात आती है कि वे जो सच्चे बिश्वासी कहलाये जाते पूरी रीति से पापरहित नहीं हैं। इस का कारण यह है कि यद्यपि परमेश्वर पूरी तरह से मनुष्य को उस के पाप करने से बचा सकता है इस बात की पूर्णता उस मनुष्य के बिश्वास पर निरभर है जहां लों बिश्वास की पूर्णता होती वहां लों मुक्ति की पूर्णता भी होती है जहां लों वह मनुष्य ईश्वर पर पूरा भरोसा रखे और उस से बिन्ती करके उस की इच्छा को जाने और आत्मिक वल प्राप्त करके हर एक प्रकार से ममता और अहंकार और डर दूर करके ईश्वर की आज्ञाओं और इच्छा के अनुसार चले वहां लों उस की मुक्ति पूरी होती जाती है। कदाचित् हम किसी के बारे में नहीं कह सकते हैं कि उस की मुक्ति हो चुकी है पर बहुतों के बिषय में हम यह कह सकते हैं कि उन की मुक्ति होती जाती है अर्थात् उन का स्वभाव बदल गया है और दिन प्रतिदिन वे पुरानी चाल से नियारे होते हैं और नई चाल से चलते हैं। इस में कुछ सन्देह नहीं कि बहुतों के बारे में यह कहना पड़ता है कि यदि वास्तव में वे सच्ची रीति से योशु मसीह पर बिश्वास लाये हैं और उन के स्वभाव में तबदीली

हुई है तौभी उन की मुक्ति अधूरी है। ईश्वर का काम उन में आरंभ हुआ है पर रुक गया है उन का बिश्वास पूरा नहीं हुआ वे पूरी रीति से ईश्वर पर भरोसा नहीं रखते और पूरे आज्ञाकारी नहीं हुए हैं उन की मुक्ति अब तक पूरी नहीं है ।

संक्षेप वर्णन ।

अब संक्षेप करके फिर बतलाना चाहिये कि मुक्ति का ठीक २ अर्थ यह है। पाप से बच जाना अर्थात् ईश्वर से प्रेम रखना और ऐसा शुद्ध स्वभाव प्राप्त करना कि हर एक बात में ईश्वर की इच्छा को स्वीकार करना। ऐसी मुक्ति के साथ ही साथ और २ बातें हैं। किये हुए पापों के लिये क्षमा प्राप्त करना। अभी (कम या अधिक) और अन्तकाल में सर्ब्बथा अपने पाप के दण्ड से बच जाना। परमेश्वर की संगति रखना। और अन्त में उसी के साथ स्वर्ग में सदा सर्बदा आनन्द-पूर्वक रहना ।

स्मरण रखना चाहिये कि जब "ईश्वर की इच्छा के अनुसार चलना" कहा जाता है इस में हर एक प्रकार की अच्छी २ बातें समाई गई हैं। वह जो सच्चा बिश्वासी है इसी प्रकार से परमेश्वर में लौलीन नहीं होता है कि संसार में रहके उचित रीति से अपने सारे सांसारिक धर्म्मों को और कर्म्मों को पूरा नहीं करता वह सब मनुष्यों से प्रेम रखता और परहितकारी होके सब लोगों की भलाई के लिये चिन्तायमान रहता है और हर एक प्रकार की बुराई से बचता रहता है कि जिस के कारण

कोई ठोकर खावे या किसी की हानि होवे या ईश्वर का अनादर होवे ।

मुक्ति किस प्रकार से प्राप्त होवे ।

अब दूसरी बड़ी बात का निर्णय करना पड़ता है अर्थात् मुक्ति किस प्रकार से प्राप्त होवे ।

हिन्दुओं के तीन मार्ग ।

पहिले उन तीन मार्गों का कुछ सोच विचार करना चाहिये जिन का वर्णन हिन्दू मतों में किया जाता है अर्थात् भक्तिमार्ग कर्म्ममार्ग और ज्ञानमार्ग । कदाचित वे सब कुछ न कुछ मान लेते हैं कि यह तीन मार्ग सर्व्वथा अलग नहीं हैं भक्तिमार्ग में कुछ न कुछ कर्म्म और कुछ न कुछ ज्ञान की आवश्यकता है । तौभी वे प्रायः करके मान लेते हैं कि कोई मनुष्य किसी विशेष मार्ग को चुन सकता है और उस के द्वारा मुक्ति प्राप्त कर सकता है ।

कर्म्ममार्ग ।

हिन्दुओं के बीच में यह बात बहुत प्रचलित है कि मनुष्य अपने कर्म्म धर्म्म के द्वारा मुक्ति पा सकता है । हम को मालूम है कि यह कर्म्म धर्म्म नाना प्रकार के हैं । जो लोग धनी हैं वे अपने रुपियों से पुण्य मोल ले सकते हैं । फिर लोग बहुत परिश्रम और चेष्टा करके पूजा पाठ जप तप स्नान यात्रा तीर्थ करने से मुक्ति को कमाने के लिये आशा रखते हैं । या नाना प्रकार के कष्ट उठाने से वे मानो अपने बल से मुक्ति प्राप्त करने

का उद्योग करते हैं। पर समझ लीजिये कि इस मत के अनुसार मुक्ति स्वाभाविक दशा से सम्बन्ध नहीं रखती है पर केवल यह समझी जाती है कि दण्ड से छुटकारा यही मुक्ति है या आनन्द प्राप्त करने का अधिकारी होना यही मुक्ति है।

देखने से मालूम होता है कि ऐसे २ कर्म्म करने से मनुष्य पावन और पवित्र नहीं हो जाते हैं। वे लोग जो समझते हैं कि अपने ऐसे कर्म्मों से वे मुक्ति कमा सकते हैं यह दिखलाते कि वे सर्व्वथा नहीं जानते है कि ईश्वर कौन और कैसा है और मुक्ति क्या है। वे मानो ईश्वर के साथ लेन देन करने को तैयार हैं और सर्व्वथा भूल जाते कि ईश्वर मुक्तिदाता है और मुक्ति स्वभाव का बदलना है।

और जब हम उन देवताओं और देवियों के विषय में सोच विचार करे जिन की पूजा किई जाती है हम अवश्य यह पूछ उठेंगे कि इन से और धर्म्म से क्या सम्बन्ध है?

भक्ति मार्ग ।

प्रायः करके कर्म्म के साथ भक्ति की आवश्यकता का कुछ वर्णन भी किया जाता है। बतलाया जाता है कि किसी विशेष देवता को अपना इष्ट देवता ठहराके उस का भगत होना चाहिये या अधिक देवताओं को प्रसन्न करना चाहिये। अधिक करके हिन्दू एक नहीं बरन अनेक देवताओं की पूजा किया करते हैं।

भक्ति का क्या अर्थ है? मैं समझता हूं कि पहिले इस

का अर्थ यह है किसी से अनुराग रखना फिर उस की आराधना करना और उसी का नाम लेना और उस की प्रशंसा करना फिर उस पर भरोसा रखना कि वह मुक्ति देगा। इस रीति से भक्ति में तीन गुण दिखलाई देते हैं एक अनुराग या प्रेम। (२) विश्वास या भरोसा। (३) आराधना या पूजा। और निःसन्देह यदि देवता ईश्वर होता ऐसा करना बहुतही उचित है और यह मुक्ति का मार्ग कहने के योग्य होता। परन्तु पूछना चाहिये कि ये देवता कौन हैं जिन पर लोग भरोसा रखते हैं? उन में से एक नहीं जो ईश्वर कहने के योग्य है। यदि हम हिन्दू धर्म्मशास्त्रों में उन की कथायें पढ़ें तो स्पष्ट प्रगट होता है कि उन के बतलानेवालों के कहने के अनुसार वे आप मुक्ति प्राप्त कर चुके नहीं थे पर नाना प्रकार के पाप किया करते थे। और कोई एक प्रमाण नहीं है कि वे सचमुच थे या हैं। यदि कोई मनुष्य पक्षपात को छोड़के पुराणों को देखे तो उस को मालूम हो सकेगा कि जो २ बाते इन देवताओं के बारे में लिखी हुई हैं सो खियाली कथाएं हैं और अधिक करके ऐसी कथाएं जो न लिखने के न पढ़ने के योग्य हैं।

ज्ञान मार्ग।

ज्ञान मार्ग के बारे में मैं बहुत नहीं कहना चाहता हूं बहुत कहा गया है। ज्ञान एक बहुत उत्तम वस्तु है पर जिस को वेदान्ती ज्ञान कहते हैं सो कैसा ज्ञान है? उन के मत के अनुसार ज्ञान तो यह है कि मैं ब्रह्म हूं। यदि मैं ब्रह्म हूं तो मुक्ति की क्या आवश्यकता है? वे

बतलाते हैं कि ब्रह्म को छोड़के और कुछ नहीं है और ब्रह्म पापमय न हुआ न है न हो सकता है। ऐसे मत के अनुसार न पाप है न मुक्ति है। वेदान्ती कभी बतलाते हैं कि साधारण लोगों के लिये जो अज्ञानी हैं कर्म्म धर्म्म करना और भक्ति करना उचित है पर फिर वे बतलाते हैं कि देवता और उन के पुजारी वास्तव में हैं ही नहीं पर केवल माया कल्पित हैं।

योग मार्ग ।

एक और बात है कि जिस के बारे में दो चार बातें कहनी चाहिये अर्थात् योग मार्ग। उन तीन मार्गों के साथ जिन की चर्चा ऊपर किई गई है योग का बर्णन कुछ मिला हुआ है। पर आप लोग जानते होंगे कि एक योग शास्त्र है और बहुत से हिन्दू बतलाते हैं कि विशेष करके योग बल के द्वारा मुक्ति हो सकती है। योग का विशेष अभिप्राय यह है कि इन्द्रियों पर प्रबल हो जाना यहां लों कि योगी शारीरिक और सांसारिक विषयों से अलग होके मानो शून्य हो जाये और जब सब कुछ लोप हो गया तब मुक्ति हो चुकी। इस में और नष्ट होने में क्या भेद है? मुक्ति यह नहीं है कि जीवन लोप हो जाये पर यह कि हमारा जीवन पाप से और दुःख से छूटके हम जीवते ईश्वर से मेल रखें और आप सदा आनन्दपूर्वक जीते रहें।

मसीही मार्ग ।

अब देखना चाहिये कि मसीही मत में मुक्ति प्राप्त करने के विषय में क्या बर्णन किया जाता है? यदि

किसी मसीही से यह बात पूछी जाय कि मुक्ति किस रीति से प्राप्त होवे? झटपट यह उत्तर मिलेगा कि यीशु मसीह पर बिश्वास लाओ और तुम मुक्ति पाओगे। यह बहुत ठीक है पर इस का पूरा वर्णन लम्बी चौड़ी बात है। बिश्वास क्या है? बिश्वास लाने के क्या २ लक्षण हैं? बिश्वास के साथ और कुछ चाहिये कि नहीं।

बिश्वास क्या है।

यह बतलाना कि बिश्वास ठीक २ क्या है सहज बात नहीं है। किसी बात को स्वीकार करना कि यह बात सच है बिश्वास नहीं है। जिस प्रकार से कि कोई लड़का समझे कि यह मेरा पिता है यह मेरी माता है तौभी उन की बात न माने और उन का आदर न करे तो क्या यह अच्छा लड़का समझा जाय? वैसे ही सहस्र मनुष्य ऐसे हैं जो अच्छे प्रकार से इस बात को सच जानते है कि यीशु मसीह था और जो कुछ उस के बारे में सुसमाचारों में लिखा हुआ है सो सच है वह आश्चर्य्य कर्म्म करता था वह पवित्र था वह परहितकारी होके मारा गया वह जी उठा और अब लों स्वर्ग में बिराजमान है। तो क्या जितने लोग ये सब बाते सच्ची जानते हैं वे सब सच्चे बिश्वासी हैं? किसी बात को सच जानना बिश्वास नहीं है। वास्तव में बिश्वास बातों से नहीं और वस्तुओं से नहीं परन्तु किसी चैतन्य आत्मा से सम्बन्ध रखता है।

कभी यह कहा जाता है कि बिश्वास कठिन शब्द है इस को छोड़के भरोसा कहिये। पर भरोसा और

बिश्वास दोनों एक बात नहीं है। हम यीशु मसीह पर भरोसा रख सकते है इस कारण कि हम उस के बिश्वासी हैं। जब लों हम बिश्वास नहीं लाये हैं तब लों हम भरोसा रख नहीं सकते है।

ईश्वर पर बिश्वास लाना। मेरी समझ में इस का अर्थ कुछ यह है। ईश्वर को ईश्वर जानके और यह समझके कि वह सब लोगों का और मेरा स्वर्गीय पिता है वह मेरी भलाई चाहता है और बुद्धिमान और सर्व्वशक्तिमान होके मेरी भलाई कर सकता है उसी से प्रेम रखना और उस की इच्छा को आनन्दपूर्वक स्वीकार करना यही बिश्वास है।

मैं जानता हूं कि वहुत से लोग कहने को तैयार हैं कि हां यह वात ठीक है मैं ईश्वर ही पर बिश्वास लाया हूं यीशु मसीह की क्या आवश्यकता है। मेरा उत्तर यह है। यीशु मसीह आया कि हम ईश्वर को जानें और उचित रीति से उस पर बिश्वास लावें। एक बात तो यह है कि यीशु मसीह विना पापी मनुष्य ईश्वर को यथार्थ रीति से नहीं जान सकते हैं। और समझ लीजिये कि वह जो सचमुच ईश्वर को जानता और उस पर बिश्वास करता वह आनन्दपूर्वक उस को ग्रहण करेगा जो ईश्वर की ओर से भेजा गया था और जो यह कह सकता था कि मै और पिता एक हैं जिस ने मुझ को देखा पिता को भी देखा है। जिस का बिश्वास ईश्वर पर है वह नम्रतापूर्वक किसी उचित रीति को ग्रहण करेगा जो परमेश्वर उस की मुक्ति के लिये ठहरावेगा।

इधर उधर देखने से मालूम होता है कि जहां प्रभु

यीशु नहीं माना जाता है वहां अच्छे प्रकार से परमेश्वर पहिचाना नहीं जाता है और वहां भी जैसे कि चाहिये लोग पाप का अवगुण नहीं पहचानते हैं उस से घिन्न नहीं रखते है उस से बचने के लिये चेष्टा नहीं करते हैं और चेष्टा करते हुए भी बच नहीं जाते हैं परन्तु अधिक करके यह नहीं जानते हैं कि मुक्ति का यही अर्थ है कि ईश्वर का सा मिजाज या स्वभाव रखना यही मुक्ति है। यीशु मसीह के द्वारा और विशेष करके उस के मरने के द्वारा लोगों के मनों में यह बात प्रकाशित होती जाती है कि हम कैसे पापी हैं। वे अपने पापों से घिन्न खाते है और विश्वास के द्वारा प्रभु यीशु की शरण लेके न केवल अपने किये हुए पापों के लिये क्षमा प्राप्त करते हैं परन्तु पाप करने से बचते जाते है।

स्मरण रखना चाहिये कि विश्वास मुक्ति नहीं देता है। मुक्तिदाता प्रभु यीशु मसीह है और विश्वास के द्वारा हम मानो प्रभु यीशु मसीह को पकड़ लेते हैं और उस के सच्चे लोग बन जाते हैं।

विश्वास के साथ और कुछ चाहिये या नहीं।

कभी लोग कहते हैं कि हम केवल विश्वास के द्वारा मुक्ति प्राप्त करते हैं इस कारण ज्ञान और धर्म्म कर्म्म की कुछ आवश्यकता नहीं है। यही बड़ी भूल है यदि विश्वास सच्चा विश्वास है सब धार्म्मिक बातें उस में उपस्थित हैं। बिना ज्ञान विश्वास नहीं हो सकता है। क्योंकि जिस को हम नहीं जानते हैं उस पर हम विश्वास नहीं ला सकते हैं। ईश्वर पर या यीशु मसीह

पर (दोनों एक ही बात है) हम बिश्वास लाते हैं इस कारण कि हम प्रतीति करते हैं कि वह बिश्वास करने के योग्य है। फिर यदि हम सचमुच उस पर बिश्वास ला चुके हैं यद्यपि हम को अवकाश नहीं मिला कि हम दिखलावें कि हम उस के आज्ञाकारी हैं तौभी हमारा स्वभाव बदल गया है और अवश्य अवकाश होते ही हम उस की बातें और आज्ञायें मान लेंगे नहीं तो हमारा विश्वास बचनमात्र है और सच्चा बिश्वास नहीं। यह कहना कि मैं बिश्वास लाया हूं और बात है और सच-मुच बिश्वास लाना और बात है।

एक प्रकार से यह कहना उचित है कि न केवल बिश्वास के द्वारा मुक्ति होती है पर बिश्वास मुक्ति तो है। अर्थात् जब स्वभाव में वह तबदीली हुई है जिस को हम बिश्वास कहते हैं मुक्ति तो हुई है। मैं यह नहीं कहता हूं कि पूरी मुक्ति मिल चुकी है पर बिश्वास अब लों पूरा नहीं हुआ है जैसे कि ऊपर मैं कह चुका हूं। जहां लों बिश्वास पूरा हुआ है वहां लों मुक्ति की पूर्णता भी हुई है।

अन्त में मैं फिर कहता हूं कि सुसमाचार को जानना या प्रसन्न करना या प्रतीति करना बिश्वास नहीं है। और यह कहना कि मैं मसीही हूं या बपतिस्मा लेना या कलीसिया में संभागी होना यह बिश्वास नहीं है। बिश्वास मन ही में होता है और स्वभाव का बदलना है हां यहां लों स्वभाव का बदलना कि ईश्वर की इच्छा हमारे सिंहासनरूपी दिल पर बिराजमान है और उस की इच्छा के अनुसार हमारे ध्यान और बचन और कर्म्म

पवित्र और पावन और प्रेममय होते जाते और जब लों कि हर एक प्रकार से बोलचाल और चालचलन से यह बात प्रगट न होवे कि हम ईश्वर के आज्ञाकारी हैं तब लों मुक्ति में और विश्वास में न्यूनता है। सुसमाचार की शिक्षा यह है कि मुक्ति न केवल मर जाने पर होवेगी पर यहां हमारे जीते जी होती जाती रहेगी।

एक बहुत भारी विषय है जो इस व्याख्या से दृढ़ सम्बन्ध रखता है पर जिस का कुछ वर्णन नहीं किया गया है। अर्थात् परमेश्वर ने हमारी मुक्ति के लिये क्या किया है? मसीही मत का उत्तर यह है कि प्रभु यीशु मसीह के प्रायश्चित्त होने के द्वारा परमेश्वर ने सब लोगों के लिये मुक्ति का मार्ग खोल दिया है। यह विषय "प्रभु यीशु मसीह का प्रायश्चित्त होना" ऐसा भारी है कि इन व्याख्याओं में उस का वर्णन नहीं किया जा सकता है उस के लिये एक अलग पुस्तक चाहिये॥